//अंगुत्तर-निकाय/

दूसरा भाग

चौथानिपात

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

//१. प्रथम पंचाशिका/

//१. भण्डग्राम वर्ग/

//१. अनुबुद्ध सुत्त/

१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान वज्‍जी जनपद में भण्डग्राम मेंविहार कर रहे थे। वहां भगवान नेभिक्षुओं को संबोधितकिया–

“भिक्षुओ!”

“भदंत!” कहकर उनभिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचनदिया। भगवान ने यह कहा–

“भिक्षुओ! चार धर्मों (बातांें) का बोध न होने से ही, प्रतिवेधन (अनुभव द्वारा प्राप्त यथार्थ ज्ञान) न होने से ही, मेरा और तुम्हारा यह दीर्घकाल तक दौड़ना, संसार में बार-बार जन्म ग्रहण करते संसरण हुआ है। कौन-से चार?भिक्षुओ, आर्य-शील का बोध न होने से ही, प्रतिवेधन न होने से ही, मेरा और तुम्हारा दीर्घकाल तक दौड़ना, संसार में बार-बार जन्म ग्रहण करते संसरण हुआ है।भिक्षुओ, आर्य-समाधि का बोध न होने से ही, प्रतिवेधन न होने से ही, मेरा और तुम्हारा दीर्घकाल तक दौड़ना, संसार में बार-बार जन्म ग्रहण करते संसरण हुआ है।भिक्षुओ, आर्य-प्रज्ञा का बोध न होने से ही, प्रतिवेधन न होने से ही, मेरा और तुम्हारा दीर्घकाल तक दौड़ना, संसार में बार-बार जन्म ग्रहण करते संसरण हुआ है।भिक्षुओ, आर्य-विमुक्ति का बोध न होने से ही, प्रतिवेधन न होने से ही, मेरा और तुम्हारा दीर्घकाल तक दौड़ना, संसार में बार-बार जन्म ग्रहण करते संसरण हुआ है।भिक्षुओ, उस आर्य-शील का बोध हो गया, प्रतिवेधन हो गया, आर्य-समाधि का बोध हो गया, प्रतिवेधन हो गया; आर्य-प्रज्ञा का बोध हो गया, प्रतिवेधन हो गया; आर्य-विमुक्ति का बोध हो गया, प्रतिवेधन हो गया, भवतृष्णा का उच्छेद हो गया, भव-नेत्री क्षीण हो गई, अब पुनर्भव नहीं होगा।

भगवान ने यह कहा और यह कहकर, तदनंतर शास्ता ने यह कहा–

“सीलं समाधि पञ्‍ञा च,विमुत्ति च अनुत्तरा।

अनुबुद्धा इमे धम्मा, गोतमेन यसस्सिना॥

“इति बुद्धो अभिञ्‍ञाय, धम्ममक्खासिभिक्खुनं।

दुक्खस्सन्तकरो सत्था, चक्खुमा परिनिब्बुतो”ति॥

[यशस्वी गौतम ने शील, समाधि, प्रज्ञा तथा अनुत्तर (सर्वश्रेष्‍ठ)विमुक्ति इन धर्मों का बोध प्राप्तकिया। दुःख का अंत करने वाले, शास्ता, चक्षुमान, तृष्णाविरहीत (परिनिवृत) बुद्ध ने उनका अभिज्ञान करकेभिक्षुओं को धर्मोपदेशकिया।]

//२. पतित सुत्त/

२. “भिक्षुओ, जो इन चार धर्मों (बातों) से युक्त नहीं होता, वह ‘इस धर्म-विनय (बुद्ध-शासन) से पतित’ कहलाता है। कौन-से चार?भिक्षुओ, जो आर्य-शील से युक्त नहीं होता, वह ‘इस धर्म-विनय से पतित’ कहलाता है ।भिक्षुओ, जो आर्य-समाधि से युक्त नहीं होता, वह ‘इस धर्म-विनय से पतित’ कहलाता है ।भिक्षुओ, जो आर्य-प्रज्ञा से युक्त नहीं होता, वह ‘इस धर्म-विनय से पतित’ कहलाता है ।भिक्षुओ, जो आर्य-विमुक्ति से युक्त नहीं होता, वह ‘इस धर्म-विनय से पतित’ कहलाता है ।भिक्षुओ, जो इन चार धर्मों से युक्त नहीं होता, वह ‘इस धर्म-विनय से पतित’ कहलाता है।

“भिक्षुओ, जो इन चार धर्मों (बातों) से युक्त होता है, वह ‘इस धर्म-विनय से अपतित’ (स्थापित,स्थित कहलाता है। कौन-से चार से?भिक्षुओ, जो आर्य-शील से युक्त होता है, वह ‘इस धर्म-विनय से अपतित’ कहलाता है ।भिक्षुओ, जो आर्य-समाधि से युक्त होता है, वह ‘इस धर्म-विनय से अपतित’ कहलाता है।भिक्षुओ, जो आर्य-प्रज्ञा से युक्त होता है, वह ‘इस धर्म-विनय से अपतित’ कहलाता है ।भिक्षुओ, जो आर्य-विमुक्ति से युक्त होता है, वह ‘इस धर्म-विनय से अपतित’ कहलाता है ।भिक्षुओ, जो इन चार धर्मों से युक्त होता है, वह ‘इस धर्म-विनय से अपतित’ कहलाता है ।

“चुता पतन्ति पतिता,गिद्धा च पुनरागता।

कतंकिच्‍चं रतं रम्मं, सुखेनान्वागतं सुख”न्ति॥

जो च्युत हैं, जो पतित हैं, वेगिरते हैं। जो तृष्णा-युक्त हैं, वे पुनः संसार में आते हैं।जो कृतकृत्य हैं, जो वे रमणीय में अनुरक्त रह चूके हैं उन्होंने सुख द्वारा सुख का अनुसरणकिया।

//३. क्षत सुत्त (प्रथम)/

(यहां पालि ‘खत’ का अनुवाद ‘क्षत’ (घायल) करना उचित होगा । धातु - √क्षन् – चोट / हानि पहंुचाना)

३. “भिक्षुओ, चार धर्मों (बातों) से युक्त मूर्ख, अव्यक्त (अज्ञानी), असत्पुरुष अपनी क्षति कर, (खुद को) घायल करविचरता है (अर्थातमिथ्या-दृष्टि से संपन्‍न हो जीवनबिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है। कौन-से चार?बिना जाँचे,बिना परीक्षाकिए अप्रशंसार्ह की प्रशंसा करता है;बिना जाँचे,बिना परीक्षाकिए प्रशंसार्ह कीनिंदा करता है;बिना जाँचे,बिना परीक्षाकिए अप्रसन्‍न होने के स्थान पर प्रसन्‍नता व्यक्त करता है;बिना जाँचे,बिना परीक्षाकिए प्रसन्‍न होने के स्थान पर अप्रसन्‍नता व्यक्त करता है।भिक्षुओ, इन चार धर्मों से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष अपनी क्षति कर, (खुद को) घायल करविचरता है, अवगुणी होता है, सदोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।”

“भिक्षुओ, चार धर्मों (बातों) से युक्त पंडित, व्यक्त (ज्ञानी), सत्पुरुषबिना अपनी क्षतिकिए,बिना (खुद को) घायल करविचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि से संपन्‍न हो जीवनबिताता ह)ै, गुणी होता है,निर्दोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है। कौन-से चार? जाँच कर, परीक्षा कर अप्रशंसार्ह कीनिंदा करता है; जाँच कर, परीक्षा कर प्रशंसार्ह की प्रशंसा करता है; जाँच कर, परीक्षा कर अप्रसन्‍न होने के स्थान पर अप्रसन्‍नता व्यक्त करता है; जाँच कर, परीक्षा कर प्रसन्‍न होने के स्थान पर प्रसन्‍नता व्यक्त करता है।भिक्षुओ, इन चार धर्मों से युक्त पंडित, व्यक्त, सत्पुरुषबिना अपनी क्षतिकिए,बिना (खुद को) घायल करविचरता हैै, गुणी होता है,निर्दोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

“योनिन्दियं पसंसति,

तं वानिन्दति यो पसंसियो।

विचिनाति मुखेन सो कलिं,

कलिना तेन सुखं नविन्दति॥

“अप्पमत्तो अयं कलि,

यो अक्खेसु धनपराजयो।

सब्बस्सापि सहापि अत्तना,

अयमेव महन्ततरो कलि।

यो सुगतेसु मनं पदोसये॥

“सतं सहस्सानंनिरब्बुदानं,

छत्तिंसती पञ्‍च च अब्बुदानि।

यमरियगरहीनिरयं उपेति,

वाचं मनञ्‍च पणिधाय पापक”न्ति॥

[जो निंदनीय की प्रशंसा करता है, वा प्रशंसनीय की निंदा करता है, वह अपने मुख से पाप का ही संग्रह करता है, पाप का संग्रह करने के कारण वह सुख नहीं भोगता है।

जुए में जो अपने साथ समस्त धन की हानि होती है, वह बड़ी हानि नहीं होती। यह जो ‘सुगतों’ के प्रति मन को मैला कर लेना है, यही बड़ी हानि है।

जो पापयुक्त मन से सदोष वाणी बोलता है,किसी श्रेष्‍ठ-पुरुष की निंदा करता है, वह शत-सहस्र तथा छत्तीस (१०००३६)निरब्बुद और पांच (५) अब्बुदों तक नरक में जाता है।]

//४. क्षत सुत्त (द्वितीय)/

४. “भिक्षुओ, इन चार के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष अपनी क्षति कर, (खुद को) घायल करविचरता है (अर्थातमिथ्यादृष्टि संपन्‍न हो जीवनबिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है। कौन-से चार?भिक्षुओ, माता के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष अपनी क्षति कर, (खुद को) घायल करविचरता है अर्थातमिथ्या-दृष्टि से संपन्‍न हो जीवनबिताता है, अवगुणी होता है, सदोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।भिक्षुओ,पिता के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला..... कमाता है।भिक्षुओ, तथागत के प्रति..... कमाता है।भिक्षुओ, तथागत श्रावक के प्रति..... कमाता है।भिक्षुओ, इन चार के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष अपनी क्षति कर, (खुद को) घायल करविचरता है, अवगुणी होता है, सदोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

“भिक्षुओ, इन चार के प्रति उचित व्यवहार करने वाला पंडित, व्यक्त, सत्पुरुषबिना अपनी क्षतिकिए,बिना (खुद को) घायल करविचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि से संपन्‍न हो जीवनबिताता है), गुणी होता है,निर्दोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है। कौन-से चार?भिक्षुओ, माता के प्रति उचित व्यवहार करने वाला पंडित, व्यक्त, सत्पुरुषबिना अपनी क्षतिकिए,बिना (खुद को) घायल करविचरता है अर्थात सम्यक-दृष्टि से संपन्‍न हो जीवनबिताता है, गुणी होता है,निर्दोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।भिक्षुओ,पिता के प्रति उचित व्यवहार करने वाला..... कमाता है।भिक्षुओ, तथागत के प्रति..... कमाता है।भिक्षुओ, तथागत श्रावक के प्रति..... कमाता है।भिक्षुओ, इन चार के प्रति उचित व्यवहार करने वाला पंडित, व्यक्त, सत्पुरुषबिना अपनी क्षतिकिए,बिना (खुद को) घायल करविचरता है, गुणी होता है,निर्दोष होता है,विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

“मातरिपितरि चापि, योमिच्छा पटिपज्‍जति।

तथागते वा सम्बुद्धे, अथ वा तस्स सावके।

बहुञ्‍च सो पसवति, अपुञ्‍ञं तादिसो नरो॥

“ताय नं अधम्मचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।

इधेव नं गरहन्ति, पेच्‍चापायञ्‍च गच्छति॥

“मातरिपितरि चापि, यो सम्मा पटिपज्‍जति।

तथागते वा सम्बुद्धे, अथ वा तस्स सावके।

बहुञ्‍च सो पसवति, पुञ्‍ञं एतादिसो नरो॥

“ताय नं धम्मचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।

इधेव नं पसंसन्ति, पेच्‍च सग्गे पमोदती”ति॥

[जो माता,पिता, संबुद्ध तथागत अथवा उनके श्रावकों के प्रति अनुचित व्यवहार करता है, वैसा आदमी बहुत अपुण्य कमाता है। माता-पिता के प्रति उस अधार्मिक चर्या के कारण पंडितजन यहां (इस लोक में) उसकी निंदा करते हैं तथा मरकर वह नरकगामी होता है। जो माता,पिता, संबुद्ध तथागत अथवा उनके श्रावकों के प्रति उचित व्यवहार करता है, वैसा आदमी बहुत पुण्य कमाता है। माता-पिता के प्रति उस धार्मिक चर्या के कारण पंडित-जन यहां (इस लोक में) उसकी प्रशंसा करते हैं तथा मरकर वह स्वर्ग में प्रमुदित होता है।]

//५. अनुस्रोत सुत्त/

५. “भिक्षुओ, संसार में इन चार प्रकार के लोगविद्यमान हैं। कौन-से चार? अनुस्रोतगामी (स्रोत के साथ जाने वाला) पुद्गल। प्रतिस्रोतगामी (स्रोत केविपरीत जाने वाला) पुद्गल,स्थित पुद्गल तथा स्रोत को पार कर स्थल परस्थित हुआ ब्राह्मण।“भिक्षुओ, अनुस्रोतगामी पुद्गल कौन-सा होता है?भिक्षुओ, एक आदमी काम-भोगों का सेवन करता है, पापकर्म करता है।भिक्षुओ, यह आदमी अनुस्रोतगामी पुद्गल कहलाता है।

“भिक्षुओ, प्रतिस्रोतगामी पुद्गल कौन-सा होता है?भिक्षुओ, एक आदमी काम-भोगों का सेवन नहीं करता, पापकर्म भी नहीं करता, दुःख सहन करता हुआ भी, दौर्मनस्य सहन करता हुआ भी, अश्रु-मुख, रोता हुआ, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का आचरण करता है।भिक्षुओ, यह आदमी प्रतिस्रोतगामी पुद्गल कहलाता है।

“भिक्षुओ,स्थित पुद्गल कौन-सा होता है?भिक्षुओ, एक आदमी पतन की ओर ले जाने वाले पांच ओरंभागिय संयोजनों का क्षय कर ‘ओपपातिक’ हो जाता है, वहीं से परिनिर्वृत होने वाला, वापस इस लोक में न लौटने वाला।भिक्षुओ, यह आदमीस्थित पुद्गल कहलाता है।

“भिक्षुओ, (स्रोत को) पार कर स्थल परस्थित हुआ ब्राह्मण कौन-सा होता है?भिक्षुओ, एक आदमी आस्रवों के क्षय से इसी जन्म में अनास्रवचित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं अभिज्ञात कर, साक्षात कर, प्राप्त करविहार करता है।भिक्षुओ, यह आदमी (स्रोत को) पार कर स्थल परस्थित हुआ ब्राह्मण कहलाता है।भिक्षुओ, संसार में ये चार प्रकार के लोगविद्यमान हैं।

“ये केचि कामेसु असञ्‍ञता जना,

अवीतरागा इध कामभोगिनो।

पुनप्पुनं जातिजरूपगामि ते,

तण्हाधिपन्‍ना अनुसोतगामिनो॥

“तस्माहि धीरो इधुपट्ठितस्सती,

कामे च पापे च असेवमानो।

सहापि दुक्खेन जहेय्य कामे,

पटिसोतगामीति तमाहु पुग्गलं॥

“यो वेकिलेसानि पहाय पञ्‍च,

परिपुण्णसेखो अपरिहानधम्मो।

चेतोवसिप्पत्तो समाहितिन्द्रियो,

स वेठितत्तोति नरो पवुच्‍चति॥

“परोपरा यस्स समेच्‍च धम्मा,

विधूपिता अत्थगता न सन्ति।

स वे मुनि वुसितब्रह्मचरियो,

लोकन्तगू पारगतोति वुच्‍चती”ति॥

[जो काम-भोगों केविषय में असंयत हैं, जो अवीतराग हैं, जो यहां (इस जन्ममें) काम-भोगी हैं, वे तृष्णाभिभूत व्यक्ति बार-बार जन्म तथा जरा को प्राप्त होते हैं और ‘अनुस्रोतगामी’ कहलाते हैं। इसलिए जो धैर्यवान व्यक्ति अपनी सति (सजगता) को उपस्थित रख, काम-भोगों तथा पापों सेविरत रहता हुआ, दुःख सहकर भी काम-भोगों का त्याग करता है, उसे ‘प्रतिस्रोतगामी’ कहते हैं।

जो पांच क्‍लेशों का प्रहाण कर परिपूर्ण शैक्ष होता है, जो पतनोन्मुख नहीं होता, जोचित्त को वश में रखता है,जिसकी इंद्रियां समाहित हैं, वही ‘स्थित’ पुरुष कहलाता है।जिसने कुशल-अकुशल सभी धर्मों को (ज्ञानपूर्वक) समेटकर जलादिया है,जिसके सारे धर्म समाप्त हो गये हों, शेष नहीं हों,वह मुनिजिसने श्रेष्‍ठ ब्रह्मचर्य जीवन का पालनकिया हो, वह ही लोक के अंत तक पहुंचा हुआ, (लोक के) पार पहुंचा हुआ कहलाता है।]

//६. अल्प-श्रुत सुत्त/

६. “भिक्षुओ संसार में ये चार प्रकार के ˉयक्तिविद्यमान हैं। कौन-से चार? (१) अल्प-श्रुत (अल्प- ज्ञानी), जो अपने ज्ञान से लाभ नहीं उठाता (अर्थात जो कम जानता है परंतु उसके अनुसार भी जीवन नहीं जीता है) (२) अल्प-श्रुत, जो अपने ज्ञान से लाभ उठाता है (३) बहु-श्रुत, जो अपने ज्ञान से लाभ नहीं उठाता (४) बहु-श्रुत, जो अपने ज्ञान से लाभ उठाता है।भिक्षुओ, कैसे ˉयक्ति अल्प-श्रुत, अपने ज्ञान से लाभ नहीं उठाने वाला होता है?भिक्षुओ, एक ˉयक्ति ने थोड़ा ही (धर्म) अध्ययनकिया होता है– सुत्त, गेय्य, वेय्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अब्भुतधर्म तथा वेदल्‍ल। वह उस अल्प-श्रुत (अल्प- ज्ञान) के अर्थ और धर्म को न जानकर, उसके अनुसार आचरण करने वाला नहीं होता। इस प्रकारभिक्षुओ, ˉयक्ति अल्प-श्रुत, अपने ज्ञान से लाभ नहीं उठाने वाला होता है।

“भिक्षुओ, कैसे ˉयक्ति अल्प-श्रुत, पर अपने ज्ञान से लाभ उठाने वाला होता है?भिक्षुओ, एक ˉयक्ति ने थोडा ही (धर्म) अध्ययनकिया होता है– सुत्त, गेय्य,वेय्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अब्भुतधर्म तथा वेदल्‍ल। वह उस अल्प-श्रुत के अर्थ और धर्म को जानकर उसके अनुसार चलने वाला होता है। इस प्रकारभिक्षुओ, ˉयक्ति अल्प-श्रुत, पर अपने ज्ञान से लाभ उठाने वाला होता है।

“भिक्षुओ, कैसे ˉयक्ति बहु-श्रुत, पर अपने ज्ञान से लाभ नहीं उठाने वाला होता है?भिक्षुओ, एक ˉयक्ति ने बहुत (धर्म) अध्ययनकिया होता है– सुत्त, गेय्य,वेय्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अब्भुतधर्म तथा वेदल्‍ल। वह उस बहु-श्रुत के अर्थ और धर्म को न जानकर उसके अनुसार आचरण करने वाला नहीं होता। इस प्रकारभिक्षुओ, ˉयक्ति बहु-श्रुत, पर अपने ज्ञान से लाभ नहीं उठाने वाला होता है।

“भिक्षुओ, कैसे ˉयक्ति बहु-श्रुत और अपने ज्ञान से लाभ उठाने वाला होता है?भिक्षुओ, एक ˉयक्ति ने बहुत (धर्म) अध्ययनकिया होता है– सुत्त, गेय्य, वेय्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अब्भुतधर्म तथा वेदल्‍ल। वह उस बहु-श्रुत के अर्थ और धर्म को जानकर उसके अनुसार आचरण करने वाला होता है।भिक्षुओ, इस प्रकार ˉयक्ति बहु-श्रुत और अपने ज्ञान से लाभ उठाने वाला होता है।भिक्षुओ, संसार में ये चार प्रकार के ˉयक्तिविद्यमान हैं।

“अप्पस्सुतोपि चे होति, सीलेसु असमाहितो।

उभयेन नं गरहन्ति, सीलतो च सुतेन च॥

“अप्पस्सुतोपि चे होति, सीलेसु सुसमाहितो।

सीलतो नं पससन्ति, तस्स सम्पज्‍जते सुतं॥

“बहुस्सुतोपि चे होति, सीलेसु असमाहितो।

सीलतो नं गरहन्ति, नास्स सम्पज्‍जते सुतं॥

“बहुस्सुतोपि चे होति, सीलेसु सुसमाहितो।

उभयेन नं पसंसन्ति, सीलतो च सुतेन च॥

“बहुस्सुतं धम्मधरं, सप्पञ्‍ञं बुद्धसावकं।

नेक्खं जम्बोनदस्सेव, को नंनिन्दितुमरहति।

देवापि नं पसंसन्ति, ब्रह्मुनापि पसंसितो”ति॥

[अल्प-श्रुत यदि शीलों में असंयत हो तो उसकी दोनों तरह से निंदा होती है, श्रुत (ज्ञान) की दृष्टि से भी और शील (आचरण) की दृष्टि से भी। अल्प-श्रुत यदि शीलों में संयत हो तो उसकी शील की दृष्टि से प्रशंसा होती है, (इस प्रकार) उसका ज्ञान संपन्‍न (सफल) होता है।

बहु-श्रुत यदि शीलों में असंयत हो तो (ज्ञान होने पर भी) उसकी शील की दृष्टि से निंदा होती है। (इस प्रकार) उसका ज्ञान संपन्‍न (सफल) नहीं होता। बहु-श्रुत यदि शीलों में संयत हो तो उसकी दोनों दृष्टियों से प्रशंसा होती है, शील की दृष्टि से भी और श्रुत (ज्ञान) की दृष्टि से भी। जो बहु-श्रुत है, धर्म-धर है, प्रज्ञावान बुद्ध-श्रावक है, जंबोनद (स्वर्ण)निष्क (मुद्रा) के समान है, उसकी कौन निंदा कर सकता है? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, ब्रह्मा द्वारा भी वह प्रशंसित है।]

//७. शोभन सुत्त/

७. “भिक्षुओ, ये चार पंडित (व्यक्त),विनीत,विशारद, बहुश्रुत, धर्मधर, धर्मानुसार आचरण करने वाले संघ की शोभा बढ़ाते हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, जोभिक्षु पंडित,विनीत,विशारद, बहुश्रुत, धर्मधर, धर्मानुसार आचरण करने वाला होता है वह संघ की शोभा बढ़ाता है।भिक्षुओ, जोभिक्षुणी पंडिता,विनीता,विशारदा, बहुश्रुता, धर्मधरा, धर्मानुसार आचरण करने वाली होती है वह संघ की शोभा बढ़ाती है।भिक्षुओ, जो उपासक पंडित,विनीत,विशारद, बहुश्रुत, धर्मधर, धर्मानुसार आचरण करने वाला होता है वह संघ की शोभा बढ़ाता है।भिक्षुओ, जो उपासिका पंडित,विनीत,विशारद, बहुश्रुत, धर्मधर, धर्मानुसार आचरण करने वाली होती है वह संघ की शोभा बढ़ाती है।

“यो होतिवियत्तो चविसारदो च,

बहुस्सुतो धम्मधरो च होति।

धम्मस्स होति अनुधम्मचारी,

स तादिसो वुच्‍चति सङ्घसोभनो॥

“भिक्खु च सीलसम्पन्‍नो,भिक्खुनी च बहुस्सुता।

उपासको च यो सद्धो, या च सद्धा उपासिका।

एते खो सङ्घं सोभेन्ति, एतेहि सङ्घसोभना”ति॥

(जो पंडित होता है,विशारद होता है, बहुश्रुत होता है, धर्मधर होता है तथा धर्मानुसार आचरण करने वाला होता है, ऐसा ˉयक्ति संघ की शोभा बढ़ाने वाला कहलाता है। जोभिक्षु शीलवान होता है, जोभिक्षुणी बहुश्रुता होती है, जो उपासक श्रद्धावान होता है तथा जो उपासिका श्रद्धावान होती है– ये संघ की शोभा बढ़ाते है, ये ही संघ की शोभा हैं।)

//८. वैशारद्य सुत्त/

८. “भिक्षुओ, ये चार तथागत के वैशारद्य (निपुणताएं) हैं,जिन वैशारद्यों से युक्त होकर तथागत वृषभ-स्थान (अग्रतम) को प्राप्त होते हैं, परिषदों में सिंहनाद करते हैं, ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, मैं इसका कोई कारण नहीं देखताकि कोई श्रमण या ब्राह्मण या देव या मार या ब्रह्मा अथवाविश्व में कोई और यथार्थ रूप से यह दोषारोपण कर सकेकि खुद को सम्यक संबुद्ध घोषित करने वाले तुम्हे अमुक धर्मों का ज्ञान नहीं है।भिक्षुओ, इस प्रकार का कोई लक्षणदिखाई न देने के कारण ही मैं क्षेम-युक्त,निर्भय, वैशारद्य-युक्त (दक्ष-निपुण) होकरविचरता हूं।

“मैं इसका कोई कारण नहीं देखताकि कोई श्रमण या ब्राह्मण या देव या मार या ब्रह्मा अथवाविश्व में कोई और यथार्थ रूप से यह दोषारोपण कर सकेकि खुद को क्षीणास्रव घोषित करने वाले तुम्हारे अमुक आस्रव पुरी तरह से क्षीण नहीं हुए हैं।भिक्षुओ, इस प्रकार का कोई लक्षणदिखाई न देने के कारण ही मैं क्षेम-युक्त,निर्भय, वैशारद्य-युक्त होकरविचरता हूं।

“मैं इसका कोई कारण नहीं देखताकि कोई श्रमण या ब्राह्मण या देव या मार या ब्रह्मा अथवाविश्व में कोई और यथार्थ रूप से यह दोषारोपण कर सकेकि तुमने जो (निर्वाण-मार्ग के) बाधक धर्म कहे हैं, उन धर्मों का सेवन (निर्वाण-मार्ग) में बाधक नहीं होता।भिक्षुओ, इस प्रकार का कोई लक्षणदिखाई न देने के कारण ही, मैं क्षेम-युक्त,निर्भय, वैशारद्य-युक्त होकरविचरता हूं।

“मैं इसका कोई कारण नहीं देखताकि कोई श्रमण या ब्राह्मण या देव या मार या ब्रह्मा अथवाविश्व में कोई और यथार्थ रूप से यह दोषारोपण कर सकेकि तुमने (लोक)-कल्याण केलिएजिस धर्म का उपदेशदिया है, वह (धर्म) उसका पालन करने वाले को सम्यक रूप से दुःख-क्षय की ओर नहीं ले जाता।भिक्षुओ, इस प्रकार का कोई लक्षणदिखाई न देने के कारण ही मैं क्षेम-युक्त,निर्भय, वैशारद्य-युक्त होकरविचरता हूं।भिक्षुओ, ये चार तथागत के वैशारद्य हैं,जिन वैशारद्यों से युक्त होकर तथागत वृषभ-स्थान को प्राप्त होते हैं, परिषदों में सिंहनाद करते हैं और ब्रह्मचक्र प्रवर्तित करते हैं।

“ये केचिमे वादपथा पुथुस्सिता,

यंनिस्सिता समणब्राह्मणा च।

तथागतं पत्वा न ते भवन्ति,

विसारदं वादपथातिवत्तं॥

“यो धम्मचक्‍कं अभिभुय्य केवली,

पवत्तयी सब्बभूतानुकम्पी।

तं तादिसं देवमनुस्ससेट्ठं,

सत्ता नमस्सन्ति भवस्स पारगु”न्ति॥

(जितने भी बहुत से ऐसे वाद हैं,जिन का श्रमण-ब्राह्मण आश्रय करते हैं, वे वादों से मुक्त,विशारद, तथागत के पास पहुंचने पर ‘शांत’ हो जाते हैं।जिस ने सारे धर्मों को जीत कर सभी प्राणियों पर अनुकंपा कर धर्मचक्र प्रवर्तितकिया, ऐसे देव-मनुष्यों में श्रेष्‍ठ भव-पारंगत बुद्ध को प्राणी नमस्कार करते हैं।)

//९. तृष्णोत्पाद सुत्त/

९. “भिक्षुओ, ये चार तृष्णा की उत्पत्ति के स्थान हैं, जहांभिक्षु में तृष्णा उत्पन्‍न होती हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, या तोभिक्षु की उत्पन्‍न होने वाली तृष्णा चीवर केविषय में उत्पन्‍न होती है, या पिंडपात (भोजन) केलिए उत्पन्‍न होती है, या शयनासन (निवासस्थान) केलिए उत्पन्‍न होती है, अथवा इस या उस अस्तित्व (भव) केविषय में तृष्णा उत्पन्‍न होती है।भिक्षुओ, ये चार तृष्णा की उत्पत्ति के स्थान हैं, जहांभिक्षु में तृष्णा उत्पन्‍न होती हैं।

“तण्हा दुतियो पुरिसो, दीघमद्धान संसरं।

इत्थभावञ्‍ञथाभावं, संसारं नातिवत्तति॥

“एवमादीनवं ञत्वा, तण्हं दुक्खस्स सम्भवं।

वीततण्हो अनादानो, सतोभिक्खु परिब्बजे”ति॥

(जिस पुरुष का साथी तृष्णा है वह संसार में दीर्घकाल तक भटकता हुआ, इस जन्म और उस जन्म को धारण करता हुआ संसार-सागर से पार नहीं होता। इस प्रकार से दुष्परिणाम को जानकरकि तृष्णा दुःख का कारण है,भिक्षु को चाहिएकि वह तृष्णा-रहित, आसक्ति-रहित तथा स्मृतिमान (सजग) होकरविचरण करे।)

//१०. योग (बंधन) सुत्त/

१०. “भिक्षुओ, ये चार प्रकार के योग (बंधन) हैं। कौन-से चार ? काम-बंधन, भव-बंधन, दृष्टि-बंधन तथा अविद्या-बंधन।भिक्षुओ, काम-बंधन कौन-सा है?भिक्षुओ, यहां एक आदमी काम-भोगों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और काम-भोगों से मुक्ति यथार्थ रूप से नहीं जानता है। उस काम-भोगों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और काम-भोगों से मुक्ति यथार्थ रूप से न जानने वाले का काम-भोगों के प्रति जो काम-राग है, कामानंद है, काम-स्नेह है, काम-मूर्छा है, काम-पिपासा है, काम-परिदाह है, कामासक्ति है तथा काम-तृष्णा है उससे वह (ˉयक्ति) अभिभूत हो जाता है।भिक्षुओ, यह काम-बंधन कहलाता है। यह काम-बंधन हुआ।

“भव-बंधन कौन-सा है?भिक्षुओ, यहां एक आदमी भव की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और भव से मुक्ति यथार्थ रूप से नहीं जानता। उस भव की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और भव से मुक्ति न जानने वाले का भव के प्रति जो भव-राग है, भवानंद हैं, भव-स्नेह है, भव-मूर्छा है, भव-पिपासा है, भव-परिदाह है, भवासक्ति है, भव-तृष्णा है उससे वह (ˉयक्ति) अभिभूत हो जाता है।भिक्षुओ, यह भव-बंधन कहलाता है। यह काम-बंधन हुआ, भव-बंधन हुआ।

“दृष्टि-बंधन कौन-सा है?भिक्षुओ, यहां एक आदमी दृष्टि (मतविशेष) की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और दृष्टि से मुक्ति यथार्थ रूप से नहीं जानता। उस दृष्टि की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और दृष्टि से मुक्ति यथार्थ रूप से नहीं जानने वाले का दृष्टि के प्रति जो दृष्टि-राग है, दृष्टि-आनंद है, दृष्टि-स्नेह है, दृष्टि-मूर्छा है, दृष्टि-पिपासा है, दृष्टि-परिदाह है, दृष्टि-आसक्ति है, दृष्टि-तृष्णा है उससे वह (ˉयक्ति) अभिभूत हो जाता है।भिक्षुओ, यह दृष्टि-बंधन कहलाता है। यह काम-बंधन हुआ, भव-बंधन हुआ, यह दृष्टि-बंधन हुआ।

“अविद्या-बंधन कौन-सा है?भिक्षुओ, यहां एक आदमी छः स्पर्श-आयतनों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और छः स्पर्श-आयतनों से मुक्ति यथार्थ रूप से नहीं जानता। उन छः स्पर्शायतनों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और छः स्पर्शायतनों से मुक्ति यथार्थ रूप से नहीं जानने वाला छः आयतनों केविषय में जो अविद्या है, अज्ञान है, उससे वह (ˉयक्ति) अभिभूत हो जाता है।भिक्षुओ, यह अविद्या-बंधन कहलाता है। यह जो काम-बंधन है, भव-बंधन है, दृष्टि-बंधन है, अविद्या-बंधन है, यह पापकारी, अकुशल, संक्‍लेशकारी, पुनर्भव देने वाले, कष्टकर, दुःखदायी, भविष्य में जाति, जरा, मरण का कारण बनने वाले धर्मों से युक्त है। इसलिए इनसे युक्त आदमी अयोग-क्षेमी (क्षेम-कुशलता रहित) कहलाता है।भिक्षुओ, ये चार योग (बंधन)हैं।

“भिक्षुओ, ये चारविसंयोग (अलगाव) हैं। कौन-से चार? काम-बंधन सेविसंयोग; भव-बंधन सेविसंयोग, दृष्टि-बंधन सेविसंयोग, अविद्या-बंधन सेविसंयोग।भिक्षुओ, काम-बंधन सेविसंयोग कौन-सा है?भिक्षुओ, यहां एक आदमी काम-भोगों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम, और काम-भोगों से मुक्ति यथार्थ रूप से जानता है। काम-भोगों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और काम-भोगों से मुक्ति यथार्थ रूप से जानने वाला काम-भोगों के प्रति जो काम-राग है, कामानंद है, काम-स्नेह है, काम-मूर्छा है, काम-पिपासा है, काम-परिदाह है, कामासक्ति है तथा कामतृष्णा है उससे अभिभूत नहीं होता है।भिक्षुओ, यह काम-बंधन सेविसंयोग कहलाता है। यह काम-बंधन सेविसंयोग हुआ।

“भव-बंधन सेविसंयोग कौन-सा है?भिक्षुओ, यहां एक आदमी भवों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और भवों से मुक्ति यथार्थ रूप से जानता है। भवों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और भवों से मुक्ति यथार्थ रूप से जानने वाला भवों के प्रति जो भव-राग है, भवानंद है, भव-स्नेह है, भव-मूर्छा है, भव-पिपासा है, भव-परिदाह है, भवासक्ति है तथा भव-तृष्णा है, उससे अभिभूत नहीं होता है।भिक्षुओ, यह भव-बंधन सेविसंयोग कहलाता है। यह हुआ काम-बंधन सेविसंयोग तथा भव-बंधन सेविसंयोग।

“दृष्टि-बंधन सेविसंयोग कौन-सा है?भिक्षुओ, एक आदमी दृष्टि की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और दृष्टि से मुक्ति यथार्थ रूप से जानता है। उस दृष्टि की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और दृष्टि से मुक्ति यथार्थ रूप से जानने वाला दृष्टि के प्रति जो दृष्टि-राग है, दृष्टि-आनंद है, दृष्टि-स्नेह है, दृष्टि-मूर्छा है, दृष्टि-पिपासा है, दृष्टि-परिदाह है, दृष्टि-आसक्ति है तथा दृष्टि-तृष्णा है उससे अभिभूत नहीं होता है।भिक्षुओ, यह दृष्टि-बंधन सेविसंयोग कहलाता है। यह हुआ काम-बंधन सेविसंयोग, भव-बंधन सेविसंयोग, तथा दृष्टि-बंधन सेविसंयोग।

“अविद्या-बंधन सेविसंयोग कौन-सा है?भिक्षुओ, एक आदमी छः स्पर्श-आयतनों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और मुक्ति यथार्थ रूप से जानता है। उन छः स्पर्श-आयतनों की उत्पत्ति,निरोध, आस्वाद, दुष्परिणाम और मुक्ति यथार्थ रूप से जानने वाला छः स्पर्शायतनों के प्रति जो अविद्या है, अज्ञान है, उससे अभिभूत नहीं होता है।भिक्षुओ, यह अविद्या- बंधन सेविसंयोग हुआ। यह हुआ काम-बंधन सेविसंयोग, भव-बंधन सेविसंयोग, दृष्टि-बंधन सेविसंयोग तथा अविद्या-बंधन सेविसंयोग। यह पापकारी, अकुशल, संक्‍लेशकारी, पुनर्भव देने वाले, कष्टकर, दुःखदायी, भविष्य में जाति, जरा, मरण का कारण बनने वाले धर्मों सेविसंयुक्त हैं। इसलिए (इन से युक्त ˉयक्ति) योग-क्षेमी कहलाते हैं।भिक्षुओ, ये चारविसंयोग हैं।

“कामयोगेन संयुत्ता, भवयोगेन चूभयं।

दिट्ठियोगेन संयुत्ता, अविज्‍जाय पुरक्खता॥

“सत्ता गच्छन्ति संसारं, जातिमरणगामिनो।

ये च कामे परिञ्‍ञाय, भवयोगञ्‍च सब्बसो॥

“दिट्ठियोगं समूहच्‍च, अविज्‍जञ्‍चविराजयं।

सब्बयोगविसंयुत्ता, ते वे योगातिगा मुनी”ति॥

[काम-बंधन, भव-बंधन या दोनों से संयुक्त होकर, तथा दृष्टि-बंधन से संयुक्त हो अविद्या से पुरस्कृत, जाति-मरण को प्राप्त होने वाले प्राणी (भव-संसार में) संसरण करते हैं। जो काम-बंधनऔर भव-बंधन को पूरी तरह से समझकर, दृष्टि-बंधन को उखाड़ देते हैं तथा अविद्या-बंधन को (परिज्ञान प्राप्त कर) नष्ट कर देते हैं, वे सभी बंधनों (योगों) से मुक्त होते हैं और वे ही मुनि सारे योगों (बंधनों) से पार होते हैं।]

//२. चर वर्ग/

//१. चर सुत्त/

११. “भिक्षुओ, यदि चलते हुएभिक्षु के मन में काम-वितर्क, द्वेष (व्यापाद)-वितर्क, अथवाविहिंसा-वितर्क उत्पन्‍न हो और वह उसे बना रहने दे, उसका त्याग न करे, उसे दूर न करे, उसे हटाए नहीं, उसका अंत न करे, तोभिक्षुओ, ऐसे चलने वालाभिक्षु उत्साहहीन, अलज्‍ज, सततनिरंतर आलसी तथा हीन-वीर्य कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि (एक जगह) खड़े हुएभिक्षु के मन में काम-वितर्क, द्वेष (व्यापाद)-वितर्क अथवाविहिंसा-वितर्क उत्पन्‍न हो और वह उसे बना रहने दे, उसका त्याग करे, उसे दूर न करे, उसे हटाए नहीं, उसका अंत न करे, तोभिक्षुओ, ऐसे खड़ा रहने वालाभिक्षु उत्साहहीन, अलज्‍ज, सततनिरंतर आलसी तथा हीन-वीर्य कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि बैठे हुएभिक्षु के मन में काम-वितर्क, द्वेष-वितर्क अथवाविहिंसा-वितर्क उत्पन्‍न हो और वह उसे बना रहने दे, उसका त्याग न करे, उसे दूर न करे, उसे हटाए नहीं, उसका अंत न करे, तोभिक्षुओ, ऐसे बैठने वालाभिक्षु उत्साहहीन, अलज्‍ज, सततनिरंतर आलसी तथा हीन-वीर्य कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि लेटे रहने पर, जागते समयभिक्षु के मन में काम-वितर्क, द्वेष-वितर्क अथवाविहिंसा-वितर्क उत्पन्‍न हो, और वह उसे बना रहने दे, उसका त्याग न करे, उसे दूर न करे, उसे हटाए नहीं, उसका अंत न करे, तोभिक्षुओ, ऐसाभिक्षु लेटे रहने पर जागते समय उत्साहहीन, अलज्‍ज, सततनिरंतर आलसी तथा हीन-वीर्य कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि चलते हुएभिक्षु के मन में काम-वितर्क, द्वेष-वितर्क अथवाविहिंसा-वितर्क उत्पन्‍न हो और वह उसे न बना रहने दे, उसका त्याग कर दे, उसे दूर कर दे, उसे हटा दे, उसका अंत कर दे, तोभिक्षुओ, ऐसे चलने वालाभिक्षु उत्साही, पापभीरु, बार-बारनिरंतर प्रयत्न करने वाला तथा वीर्यवान कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि (एक जगह) खड़े हुएभिक्षु के मन में काम-वितर्क, द्वेष-वितर्क अथवाविहिंसा-वितर्क उत्पन्‍न हो और वह उसे न बना रहने दे, उसका त्याग कर दे, उसे दूर कर दे, उसे हटा दे, उसका अंत कर दे, तोभिक्षुओ, ऐसे खड़ा रहने वालाभिक्षु उत्साही, पापभीरु, बार-बारनिरंतर प्रयत्न करने वाला तथा वीर्यवान कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि बैठे हुएभिक्षु के मन में काम-वितर्क, द्वेष-वितर्क अथवाविहिंसा-वितर्क उत्पन्‍न हो और वह उसे न बना रहने दे, उसका त्याग कर दे, उसे दूर कर दे, उसे हटा दे, उसका अंत कर दे, तोभिक्षुओ, ऐसे बैठने वालाभिक्षु उत्साही, पापभीरु, बार-बारनिरंतर प्रयत्न करने वाला तथा वीर्यवान कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि लेटे रहने पर, जागते समय भीभिक्षु के मन में काम-वितर्क, द्वेष-वितर्क अथवाविहिंसा-वितर्क उत्पन्‍न हो और वह उसे न बना रहने दे, उसका त्याग कर दे, उसे दूर कर दे, उसे हटा दे, उसका अंत कर दे, तोभिक्षुओ, ऐसाभिक्षु लेटे रहने पर जागते समय उत्साही, पापभीरु, बार-बारनिरंतर प्रयत्न करने वाला तथा वीर्यवान कहलाता है।

“चरं वा यदि वातिट्ठं,निसिन्‍नो उद वा सयं।

योवितक्‍कंवितक्‍केति, पापकं गेहनिस्सितं॥

“कुम्मग्गप्पटिपन्‍नो सो, मोहनेय्येसु मुच्छितो।

अभब्बो तादिसोभिक्खु, फुट्ठुं सम्बोधिमुत्तमं॥

“यो च चरं वातिट्ठं वा,निसिन्‍नो उद वा सयं।

वितक्‍कं समयित्वान,वितक्‍कूपसमे रतो।

भब्बो सो तादिसोभिक्खु, फुट्ठुं सम्बोधिमुत्तम”न्ति॥

(चलते हुए, खड़े हुए, बैठे हुए वा लेटे हुए जो कोईभिक्षु पापी, आसक्ति-युक्त संकल्प-विकल्पों को अपने मन में स्थान देता है, वह कुमार्ग-गामी है, वह मोह से मूर्छित है, ऐसाभिक्षु उत्तम-संबोधि का स्पर्श करने के अयोग्य है।

चलते हुए, खड़े हुए, बैठे हुए वा लेटे हुए जो कोईभिक्षु पापी, आसक्ति-युक्त संकल्प-विकल्पों को शांत कर उनके उपशमन में रत रहता है, ऐसाभिक्षु उत्तम-संबोधि का स्पर्श करने के योग्य है।)

//२. शील सुत्त/

१२. “भिक्षुओ, शील-संपन्‍न होकरविहार करो, प्रातिमोक्ष केनियमों का पालन करते हुएविहार करो, प्रातिमोक्ष के संयम से संयत होकरविहार करो, सदाचरण मेंविचरो, अणुमात्र दोषों (के करने) में भी भय मानने वाले होकर,शिक्षापदों को ग्रहण कर उनका अभ्यास करो।भिक्षुओ, शील-संपन्‍न होकरविहार करने वालों को, प्रातिमोक्ष केनियमों का पालन करते हुएविहार करने वालों को, प्रातिमोक्ष के संयम से संयत होकरविहार करने वालों को, सदाचरण मेंविचरने वालों को, अणुमात्र दोषों (के करने) में भी भय मानने वालों को,शिक्षापदों को ग्रहण कर उनका अभ्यास करने वालों को और क्या करना चाहिए?

“भिक्षुओ, यदि चलते हुएभिक्षु के लोभ तथा द्वेषविनष्ट हो जाते हैं, आलस्य (थीनमिद्ध)… उद्धतपन-कौकृत्य… तथाविचिकित्सा प्रहीण हो जाती है,दृढ प्रयत्न आरंभ होता है (तथा बना रहता है), उपस्थित सति (सजगता) मूढ़ता रहित होती है, शरीर प्रश्रब्ध, अनुत्तेजित होता है तथाचित्त समाहित एकाग्र होता है;भिक्षुओ, चलते हुए भी इस प्रकार रहने वालाभिक्षु उत्साही, पापभीरु, बार-बारनिरंतर प्रयत्न करने वाला तथा वीर्यवान कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि (एक जगह) खड़े हुएभिक्षु के लोभ तथा द्वेषविनष्ट हो जाते हैं, आलस्य (थीनमिद्ध) … उद्धतपन-कौकृत्य … तथाविचिकित्सा प्रहीण हो जाती है, दृढ प्रयत्न आरंभ होता है (तथा बना रहता है), उपस्थित सति (सजगता) मूढ़ता रहित होती है, शरीर प्रश्रब्ध, अनुत्तेजित होता है तथाचित्त समाहित एकाग्र होता है;भिक्षुओ, खड़े होते हुए भी इस प्रकार रहने वालाभिक्षु उत्साही, पापभीरु, बार-बारनिरंतर प्रयत्न करने वाला तथा वीर्यवान कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि बैठे हुएभिक्षु के मन के लोभ तथा द्वेषविनष्ट हो जाते हैं, आलस्य (थीनमिद्ध)… उद्धतपन-कौकृत्य … तथाविचिकत्सा प्रहीण हो जाती है, दृढ प्रयत्न आरंभ होता है (तथा बना रहता है), उपस्थित सति (सजगता) मूढ़ता रहित होती है, शरीर प्रश्रब्ध, अनुत्तेजित होता है तथाचित्त समाहित एकाग्र होता है;भिक्षुओ, बैठे हुए भी इस प्रकार रहने वालाभिक्षु उत्साही, पापभीरु, बार-बारनिरंतर प्रयत्न करने वाला तथा वीर्यवान कहलाता है।

“भिक्षुओ, यदि लेटे रहने पर जागते समय भीभिक्षु के लोभ तथा द्वेषविनष्ट हो जाते हैं, आलस्य (थीनमिद्ध) … उद्धतपन-कौकृत्य … तथाविचिकित्सा प्रहीण हो जाती है, दृढ प्रयत्न आरंभ होता है (तथा बना रहता है), उपस्थित सति (सजगता) मूढ़ता रहित होती है, शरीर प्रश्रब्ध, अनुत्तेजित होता है तथाचित्त समाहित एकाग्र होता है;भिक्षुओ, लेटे रहने पर जागते समय भी इस प्रकार रहने वालाभिक्षु उत्साही, पापभीरु, बार-बारनिरंतर प्रयत्न करने वाला तथा वीर्यवान कहलाता है।

“यतं चरे यतंतिट्ठे, यतं अच्छे यतं सये।

यतं समिञ्‍जयेभिक्खु, यतमेनं पसारये॥

“उद्धंतिरियं अपाचीनं, यावता जगतो गति।

समवेक्खिता च धम्मानं, खन्धानं उदयब्बयं॥

“चेतोसमथसामीचिं,सिक्खमानं सदा सतं।

सततं पहितत्तोति, आहुभिक्खुं तथाविध”न्ति॥

[भिक्षु संयत होकर चले, संयत (होकर) खड़े रहे, संयत (होकर) रुके, संयत (होकर) लेटे, संयत रहते (हाथ-पैर)सिकोड़े तथा संयत रहते (हाथ-पैर) पसारे। ऊपर, बीच में तथा नीचे जहां तक जगत की गति है, उसमें स्कंधों का, धर्मों का उदय-व्यय का परिक्षण कर, सम्यक रूप सेचित्त की शंाति केलिए जो सतत जागरूक होकर अभ्यास करता है, जोनिरंतर प्रयत्नशील है, ऐसे (ˉयक्ति) को हीभिक्षु कहते हैं।]

//३. प्रधान (प्रयत्न) सुत्त/

१३. “भिक्षुओ, ये चार सम्यक प्रधान (सम्यक-प्रयत्न) हैं। कौन-से चार? यहां,भिक्षुओ,भिक्षु अनुत्पन्‍न पापपूर्ण अकुशल धर्मों के अनुत्पाद केलिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम (वीर्यारंभ) करता है,चित्त को उसीमें लगाये रखता है, कठोर परिश्रम करता है। उत्पन्‍न पापपूर्ण अकुशल-धर्मों के प्रहाण केलिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम करता है,चित्त को उसीमें लगाये रखता है, कठोर परिश्रम करता है। अनुत्पन्‍न कुशल-धर्मों को उत्पन्‍न करने केलिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम करता है,चित्त को उसीमें लगाये रखता है, कठोर परिश्रम करता है। उत्पन्‍न कुशल-धर्मों कोस्थित करने केलिए, न भुलाने केलिए (लोप न होने), संवर्धन (वृद्धि) केलिए,विपुलता को प्राप्त कराने केलिए, भावना की पूर्णता को प्राप्त कराने केलिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम करता है,चित्त को उसीमें लगाये रखता है, कठोर परिश्रम करता है।भिक्षुओ, ये चार सम्यक प्रधान हैं।

“सम्मप्पधाना मारधेय्याभिभूता,

ते असिता जातिमरणभयस्स पारगू।

ते तुसिता जेत्वा मारं सवाहिनिं ते अनेजा,

सब्बं नमुचिबलं उपातिवत्ता ते सुखिता”ति॥

[जो सम्यक प्रधान में रत हैं उन्होंने मार-क्षेत्र को जीतलिया है, वे आसक्ति-रहित हैं, वे जाति-मरण-भय की सीमा के उस पार पहुंच गये हैं, वे सेना-सहित मार को जीतकर संतुष्ट हैं, वे इच्छारहित हैं, सारी नमुचीबल (मार की शक्ति) को अतिक्रांत कर वे सुखी हैं।]

//४. संवर सुत्त/

१४. “भिक्षुओ, ये चार प्रयत्न हैं। कौन-से चार? संवर-प्रयत्न, प्रहाण-प्रयत्न, भावना-प्रयत्न, तथा अनुरक्षण-प्रयत्न।भिक्षुओ, संवर-प्रयत्न कौन-सा है? यहां,भिक्षुओ, एकभिक्षु चक्षु से रूप को देखकर न उसकेनिमित्त को ग्रहण करता है और न उसके अनुव्यंजन को ग्रहण करता है; क्योंकि यदिभिक्षु चक्षु-इंद्रिय को असंयत रखता है तो लोभ-दौर्मनस्य आदि पाप-धर्म घर कर लेते हैं, अतः उस (चक्षु-इंद्रिय) को संयत रखने केलिए प्रयत्नशील होता है, चक्षु-इंद्रिय की रक्षा करता है, चक्षु-इंद्रिय कोनियंत्रण में रखता है। (इसी प्रकार) कान से शब्द सुनकर …नाक से गंध सूंघकर …जिव्हा से रस चखकर, काया से स्पर्श को (स्पृश्य पदार्थ को) छू कर … मन सेविचारों को जान कर, न उसकेनिमित्त को ग्रहण करता और न उसके अनुव्यंजन को ग्रहण करता है; क्योंकि यदिभिक्षु मन-इंद्रिय को असंयत रखता है तो लोभ-दौर्मनस्य आदि पापकारी अकुशल धर्म (विचार) घर कर लेते हैं, अतः उस (मन-इंद्रिय) को संयत रखने केलिए प्रयत्नशील होता है, मन-इंद्रिय की रक्षा करता है, मन-इंद्रिय कोनियंत्रण में रखता है।भिक्षुओ, यह संवर-प्रयत्न कहलाता है।

“भिक्षुओ, प्रहाण-प्रयत्न कौन-सा है? यहां,भिक्षुओ, एकभिक्षु उत्पन्‍न काम-वितर्क को बना नहीं रहने देता है, त्याग देता है, दूर कर देता है, हटा देता है, अंत कर देता है; उत्पन्‍न व्यापाद-वितर्क को … उत्पन्‍नविहिंसा-वितर्क को… अंत कर देता है; जो जो पाप-धर्म, अकुशल-धर्म उत्पन्‍न होते हैं, उन्हें बना नहीं रहने देता है, त्याग देता है, दूर कर देता है, हटा देता है, अंत कर देता है।भिक्षुओ, यह प्रहाण-प्रयत्न कहलाता है।

“भिक्षुओ, भावना-प्रयत्न कौन-सा है? यहां,भिक्षुओ, एकभिक्षु स्मृति-संबोधि-अंग (बोध्यंग) की भावना करता है, जो एकंाताश्रित है,विरागाश्रित है,निरोधाश्रित है तथा जो उत्सर्ग-परिणामी है, धर्म-विचय-संबोधि-अंग की भावना करता है, जो… वीर्य-संबोधि-अंग की भावना करता है, जो… प्रीति-संबोधि-अंग की भावना करता है, जो… प्रश्रब्धि-संबोधि-अंग की भावना करता है, जो… समाधि-संबोधि-अंग की भावना करता है, जो… उपेक्षा-संबोधि-अंग की भावना करता है, जो एकंाताश्रित है,विरागाश्रित है,निरोधाश्रित है तथा जो उत्सर्ग-परिणामी है।भिक्षुओ, यह भावना-प्रयत्न कहलाता है।

“भिक्षुओ, अनुरक्षण-प्रयत्नकिसे कहते हैं? यहां,भिक्षुओ, एकभिक्षु उत्पन्‍न श्रेष्‍ठ समाधि-निमित्त की रक्षा करता है, चाहे वह अस्थि-संज्ञा हो, कीड़े पड़ गये शरीर की संज्ञा हो, नीले पड़ गये शरीर की संज्ञा हो, क्षतविक्षत हो गये शरीर की संज्ञा हो, बहुत फूल गये शरीर की संज्ञा हो–भिक्षुओ, यह अनुरक्षण-प्रयत्न कहलाता है।भिक्षुओ, ये चार प्रयत्न हैं।”

“संवरो च पहानञ्‍च, भावना अनुरक्खणा।

एते पधाना चत्तारो, देसितादिच्‍चबन्धुना।

येहिभिक्खु इधातापी, खयं दुक्खस्स पापुणे”ति॥

[आदित्य-बंधु (तथागत) ने संवर-प्रयत्न, प्रहाण-प्रयत्न, भावना-प्रयत्न तथा अनुरक्षण-प्रयत्न इन चार प्रयत्नों का उपदेशदिया है। जोभिक्षु यहां प्रयत्नशील (आतापी) रहता है, वह दुःख के क्षय को प्राप्त करेगा।]

//५. प्रज्ञप्ति सुत्त/

१५. “भिक्षुओ, ये चार अग्र प्रज्ञप्तियां (प्रमुखताएं) हैं। कौन-सी चार?भिक्षुओ, राहु असुरेंद्र शरीर धारियों (व्यक्तित्व) में अग्र है;भिक्षुओ, राजा मंधाता काम-भोगियों में अग्र है;भिक्षुओ, पापी मार (दूसरों पर अपना) आधिपत्य रखने वालों में अग्र है;भिक्षुओ, स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में, देव-मनुष्य, श्रमण-ब्राह्मण सहित प्रजा में अर्हत सम्यक संबुद्ध तथागत ही अग्र जाने जाते हैं।भिक्षुओ, ये चार अग्र प्रज्ञप्तियां हैं।

“राहुग्गं अत्तभावीनं, मन्धाता कामभोगिनं।

मारो आधिपतेय्यानं, इद्धिया यससा जलं॥

“उद्धंतिरियं अपाचीनं, यावता जगतो गति।

सदेवकस्स लोकस्स, बुद्धो अग्गो पवुच्‍चती”ति॥

[जितने व्यक्तित्व हैं उनमें राहु अग्र है, कामभोगियों में मंधाता अग्र है; ऋद्धि तथा ऐश्वर्य से चमकता मार (दूसरों पर) आधिपत्य करने वालों में मुख्य है। ऊपर, मध्य में तथा नीचेजितनी भी जगत की गति हैं, उसमें देवों सहित लोक में बुद्ध ही अग्र (श्रेष्‍ठ) कहलाते हैं।]

//६. सूक्ष्मता सुत्त/

१६. “भिक्षुओ, ये चार सूक्ष्मतायें हैं। कौन-सी चार?भिक्षुओ, यहां एकभिक्षु रूप की परम सूक्ष्मता से इतना युक्त होता हैकि वह अपनी उस रूप-सूक्ष्मता से श्रेष्‍ठतर वा प्रणीततर कोई दूसरी रूप-सूक्ष्मता नहीं देखता, अपनी उस रूप-सूक्ष्मता से श्रेष्‍ठतर वा प्रणीततर अन्यकिसी रूप-सूक्ष्मता की कामना नहीं करता; वेदना की परम सूक्ष्मता से इतना युक्त होता हैकि वह अपनी उस वेदना-सूक्ष्मता से श्रेष्‍ठतर वा प्रणीततर कोई दूसरी वेदना-सूक्ष्मता नहीं देखता; अपनी उस वेदना-सूक्ष्मता से श्रेष्‍ठतर वा प्रणीततर अन्यकिसी वेदना-सूक्ष्मता की कामना नहीं करता; संज्ञा की परम सूक्ष्मता से इतना युक्त होता हैकि वह अपनी उस संज्ञा-सूक्ष्मता से श्रेष्‍ठतर वा प्रणीततर कोई दूसरी संज्ञा-सूक्ष्मता नहीं देखता, अपनी उस संज्ञा-सूक्ष्मता से श्रेष्‍ठतर वा प्रणीततर अन्यकिसी संज्ञा-सूक्ष्मता की कामना नहीं करता; संस्कार की परम सूक्ष्मता से इतना युक्त होता हैकि वह अपनी उस संस्कार-सूक्ष्मता से श्रेष्‍ठतर वा प्रणीततर कोई दूसरी संस्कार-सूक्ष्मता नहीं देखता, अपनी उस संस्कार-सूक्ष्मता से श्रेष्‍ठतर वा प्रणीततर अन्यकिसी संस्कार-सूक्ष्मता की कामना नहीं करता।भिक्षुओ, ये चार सूक्ष्मतायें हैं।

“रूपसोखुम्मतं ञत्वा, वेदनानञ्‍च सम्भवं।

सञ्‍ञा यतो समुदेति, अत्थं गच्छति यत्थ च।

सङ्खारे परतो ञत्वा, दुक्खतो नो च अत्ततो॥

“स वे सम्मद्दसोभिक्खु, सन्तो सन्तिपदे रतो।

धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहिनि”न्ति॥

[रूप-सूक्ष्मता को जानकर, वेदनाओं की उत्पत्ति को जानकर तथा उसी प्रकार संज्ञा जहां उत्पन्‍न होती है तथा जहां उसकानिरोध होता है उसे जानकर, संस्कारों को पराया समझ, दुःख-स्वरूप समझ, अनात्म समझ जो शांत सम्यक-दर्शीभिक्षु शांति-पद में रत होता है, वह मार को सेना सहित जीतकर अंतिम देहधारी होता है।]

//७. अगति सुत्त (प्रथम)/

१७. “भिक्षुओ, ये चार अगति-गमन हैं (कुपथ हैं, जहां नहीं जाना चाहिए)। कौन-से चार? छन्दागति को प्राप्त होता है, द्वेषागति को प्राप्त होता है, मोहागति को प्राप्त होता है तथा भयागति को प्राप्त होता है।भिक्षुओ, ये चार अगति-गमन हैं।

“छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं अतिवतति।

निहीयति तस्स यसो, काळपक्खेव चन्दिमा”ति॥

[छंद (कामना), द्वेष, भय या मोह के कारण जो धर्म का उल्‍लंघन करता है, उसका यश कृष्ण-पक्ष के चंद्रमा की तरह क्षीण (क्षय) होता है।]

//८. अगति सुत्त (द्वितीय)/

१८. “भिक्षुओ, ये चार अगति-गमन नहीं हैं । कौन-से चार? छन्दागति को प्राप्त नहीं होता (छंद के कारण कुमार्ग पर नहीं चलता है), द्वेषागति को प्राप्त नहीं होता, मोहागति को प्राप्त नहीं होता तथा भयागति को प्राप्त नहीं होता।भिक्षुओ, ये चार अगति-गमन नहीं हैं।

“छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं नातिवत्तति।

आपूरति तस्स यसो, सुक्‍कपक्खेव चन्दिमा”ति॥

[छंद (कामना), द्वेष, भय या मोह के कारण जो धर्म का उल्‍लंघन नहीं करता है, उसका यश शुक्‍ल-पक्ष के चंद्रमा की तरह अभिवृद्धि को प्राप्त होता है।]

//९. अगति सुत्त (तृतीय)/

१९. “भिक्षुओ, ये चार अगति-गमन हैं (कुपथ हैं जहां नहीं जाना चाहिए)। कौन-से चार? छन्दागति को प्राप्त होता है, द्वेषागति को प्राप्त होता है, मोहागति को प्राप्त होता है तथा भयागति को प्राप्त होता है।भिक्षुओ, ये चार अगति-गमन हैं।

“भिक्षुओ, ये चार अगति-गमन नहीं हैं । कौन-से चार? छन्दागति को प्राप्त नहीं होता, द्वेषागति को प्राप्त नहीं होता, मोहागति को प्राप्त नहीं होता तथा भयागति को प्राप्त नहीं होता।भिक्षुओ, ये चार अगति-गमन नहीं हैं।

“छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं अतिवत्तति।

निहीयति तस्स यसो, काळपक्खेव चन्दिमा॥

“छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं नातिवत्तति।

आपूरति तस्स यसो, सुक्‍कपक्खेव चन्दिमा”ति॥

[छंद (कामना), द्वेष, भय या मोह के कारण जो धर्म का उल्‍लंघन करता है, उसका यश कृष्ण-पक्ष के चंद्रमा की तरह क्षीण (क्षय) होता है। छंद (कामना), द्वेष, भय या मोह के कारण जो धर्म का उल्‍लंघन नहीं करता है, उसका यश शुक्‍ल-पक्ष के चंद्रमा की तरह अभिवृद्धि को प्राप्त होता है।]

//१०. भोजन-व्यवस्थापक (उद्देश्यक) सुत्त/

२०. “भिक्षुओ, इन चार धर्मों (बातों) से युक्त भोजन-व्यवस्थापक को ऐसा ही मानना चाहिए जैसे लाकर नरक में डालदिया गया हो। कौन-सी चार? वह छन्दागति को प्राप्त होता है, द्वेषागति को प्राप्त होता है, मोहागति को प्राप्त होता है तथा भयागति को प्राप्त होता है।भिक्षुओ, इन चार धर्मों (बातों) से युक्त भोजन-व्यवस्थापक को ऐसा ही मानना चाहिए जैसे लाकर नरक में डालदिया गया हो।

“भिक्षुओ, इन चार धर्मों (बातों) से युक्त भोजन-व्यवस्थापक को ऐसा ही मानना चाहिए जैसे लाकर स्वर्ग में डालदिया गया हो। कौन-सी चार? वह छन्दागति को प्राप्त नहीं होता, द्वेषागति को प्राप्त नहीं होता, मोहागति को प्राप्त नहीं होता तथा भयागति को प्राप्त नहीं होता।भिक्षुओ, इन चार धर्मों (बातों) से युक्त भोजन-व्यवस्थापक को ऐसा ही मानना चाहिये जैसे लाकर स्वर्ग में डालदिया गया हो।

“ये केचि कामेसु असञ्‍ञता जना,

अधम्मिका होन्ति अधम्मगारवा।

छन्दा दोसा मोहा च भया गामिनो,

परिसाकटो च पनेस वुच्‍चति॥

“एवञ्हि वुत्तं समणेन जानता,

तस्माहि ते सप्पुरिसा पसंसिया।

धम्मेठिता ये न करोन्ति पापकं,

न छन्दा न दोसा न मोहा न भया च गामिनो।

“परिसाय मण्डो च पनेस वुच्‍चति,

एवञ्हि वुत्तं समणेन जानता”ति॥

[“जो लोग काम-भोगों के प्रति असंयत रहते हैं; अधार्मिक होते हैं; धर्म का गौरव न करने वाले होते हैं; छंद, द्वेष, मोह तथा भय के वशीभूत होने वाले होते हैं, वे परिषद के कलंक कहलाते हैं” जानकार (ज्ञानी) श्रमण (बुद्ध) ने ऐसा कहा है। “इसलिए अगतियों में न जाने वाले वे सत्पुरुष प्रशंसनीय हैं जो धर्म मेंस्थित रहते हैं, जो पाप-कर्म नहीं करते हैं; जो छंद, द्वेष, मोह और भय के वश में नहीं जाते, वे परिषद के अलंकार कहलाते हैं” जानकार (ज्ञानी) श्रमण (बुद्ध) ने ऐसा कहा है।]

//३. उरुवेल वर्ग/

//१. उरुवेल सुत्त (प्रथम)/

२१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम मेंविहार करते थे। वहां भगवान नेभिक्षुओं को संबोधितकिया– “भिक्षुओ!” उनभिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचनदिया– “भदंत।” भगवान ने यह कहा–

“भिक्षुओ, अभिसंबुद्ध होने के तुरंत बाद एक समय मैं नेरञ्‍जरा नदी के तट पर अजपाल न्यग्रोध वृक्ष के नीचे, उरुवेला मेंविहार करता था। उस समयभिक्षुओ, एकांत में ध्यानमग्न रहते हुए मेरे मन में यहवितर्क उत्पन्‍न हुआ–किसीके भी प्रति गौरव-रहित होकर, आदर-रहित होकर रहना दुःखकर है। क्यों न मैंकिसी श्रमण वा ब्राह्मण के प्रति गौरव-युक्त होकर, आदर-युक्त होकर उसके आश्रय में रहूं?

“तब मेरे मन में यहविचार आयाकि यदि मेरा शीलस्कंध अपरिपूर्ण हो, तो मैं उसकी पूर्ति केलिएकिसी श्रमण वा ब्राह्मण के प्रति गौरव-युक्त, आदर-युक्त होकर उसके आश्रय में रहूं, किंतु मैं स-देव स-मार, स-ब्रह्म लोक में, स-श्रमण स-ब्राह्मण स-देव-मनुष्य जनता मेंकिसी दूसरे ऐसे श्रमण वा ब्राह्मण को नहीं देखता जो मेरी अपेक्षा अधिक शील-संपन्‍न हो,जिसके प्रति गौरव-युक्त होकर आदर-युक्त होकर मैं उसके आश्रय में रहूं।

“[इसी प्रकार] मेरे मन में यहविचार आयाकि यदि मेरा समाधि-स्कंध अपरिपूर्ण हो, तो मैं उसकी पूर्ति केलिऐकिसी श्रमण वा ब्राह्मण के प्रति गौरव-युक्त, आदर-युक्त होकर उसके आश्रय में रहूं, किंतु मैं स-देव स-मार, स-ब्रह्म लोक में, स-श्रमण स-ब्राह्मण स-देव-मनुष्य जनता मेंकिसी दूसरे ऐसे श्रमण वा ब्राह्मण को नहीं देखता जो मेरी अपेक्षा अधिक समाधि-संपन्‍न हो,जिसके प्रति गौरव-युक्त होकर आदर-युक्त होकर मैं उसके आश्रय में रहूं।

“[इसी प्रकार] मेरे मन में यहविचार आयाकि यदि मेरा प्रज्ञा-स्कंध अपरिपूर्ण हो, तो मैं उसकी पूर्ति केलियेकिसी श्रमण वा ब्राह्मण के प्रति गौरव-युक्त आदर-युक्त होकर उसके आश्रय में रहूं, किंतु मैं स-देव स-मार, स-ब्रह्म लोक में, स-श्रमण स-ब्राह्मण स-देव-मनुष्य जनता मेंकिसी दूसरे ऐसे श्रमण वा ब्राह्मण को नहीं देखता जो मेरी अपेक्षा अधिक प्रज्ञा-संपन्‍न हो,जिसके प्रति गौरव-युक्त होकर आदर-युक्त होकर मैं उसके आश्रय में रहूं।

“[इसी प्रकार] मेरे मन में यहविचार आयाकि यदि मेराविमुक्ति-स्कंध अपरिपूर्ण हो, तो मैं उसकी पूर्ति केलियेकिसी श्रमण वा ब्राह्मण के प्रति गौरव-युक्त आदर-युक्त होकर उसके आश्रय में रहूं, किंतु मैं स-देव स-मार, स-ब्रह्म लोक में, स-श्रमण स-ब्राह्मण स-देव-मनुष्य जनता मेंकिसी दूसरे ऐसे श्रमण वा ब्राह्मण को नहीं देखता जो मेरी अपेक्षा अधिकविमुक्ति-संपन्‍न हो,जिसके प्रति गौरव-युक्त होकर आदर-युक्त होकर मैं उसके आश्रय में रहूं।

“तबभिक्षुओ, मेरे मन मेंविचार आयाकिजिस धर्म का मैंने अभिज्ञान (अनुभव द्वारा परिपूर्ण ज्ञान) प्राप्तकिया है, क्यों न मैं उसी धर्म के प्रति गौरव-युक्त होकर, आदर-युक्त होकर उसके आश्रय में रहूं।

तब हेभिक्षुओ, सहम्पति ब्रह्मा अपनेचित्त से मेरेचित्त की बात जान, जैसे कोई बलवान पुरुषसिकुड़ी हुई बांह को फैलाये या फैली हुई बांह कोसिकोड़े, इसी प्रकार ब्रह्मलोक से अंतर्धान होकर मेरे सामने प्रकट हुआ। तबभिक्षुओ, सहम्पति ब्रह्मा ने उत्तरीय को एक कंधे पर कर दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेक, मुझे (हाथ जोड़कर) प्रणाम कर इस प्रकार कहा– ऐसा ही है भगवान! ऐसा ही है सुगत! भन्ते! जो भी भूतकाल में अर्हत सम्यक संबुद्ध हुए हैं, वे बुद्ध भी धर्म के ही प्रति गौरव-युक्त होकर, आदर-युक्त होकर, उसीके आश्रय सेविहार करते थे। भन्ते! जो भविष्य में भी अर्हंत सम्यक संबुद्ध होंगे वे बुद्ध भी धर्म के ही प्रति गौरव युक्त होकर, आदर-युक्त होकर, उसीके आश्रय सेविहार करेंगे; भन्ते! भगवान भी इस समय अर्हत सम्यक संबुद्ध हैं, भगवान भी धर्म के प्रति ही गौरव-युक्त होकर, आदर-युक्त होकर उसीके आश्रय सेविहार करें। सहम्पति ब्रह्मा ने यह कहा और इसके आगे यह कहा–

“ये च अतीता सम्बुद्धा, ये च बुद्धा अनागता।

यो चेतरही सम्बुद्धो, बहूनं सोकनासनो॥

“सब्बे सद्धम्मगरुनो,विहंसुविहरन्ति च।

अथोपिविहरिस्सन्ति, एसा बुद्धान धम्मता॥

“तस्माहि अत्तकामेन, महत्तमभिकङ्खता।

सद्धम्मो गरुकातब्बो, सरं बुद्धान सासन”न्ति॥

[जो भूतकाल के संबुद्ध हुए हैं, जो भविष्यकाल के बुद्ध होंगे तथा अनेक जनों के शोक-नाशक जो वर्तमान काल के संबुद्ध हैं, वे सभी सद्धर्म का गौरव करने वाले रहे हैं, रहेंगे तथा हैं– यही बुद्धों की धर्मता है। इसलिए जो अपना कुशल चाहने वाला हो,जिसको महानता की आकांक्षा हो, उसे बुद्धों के शासन का स्मरण कर सद्धर्म के प्रति गौरव का भाव रखना चाहिए।”

“भिक्षुओ, सहम्पति ब्रह्मा ने यह कहा और मुझे अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर वहीं अंतर्धान हो गया। तब सेभिक्षुओ, ब्रह्मा की भी अभ्यर्थना (प्रार्थना) और अपनी अनुकूलता जानकरजिस धर्म का मैंने साक्षात्कारकिया उसी धर्म के प्रति गौरव रख, आदर रख, उसीके आश्रय रहने लगा। क्योंकिभिक्षुओ, संघ का भी महत्व है, इसलिए संघ के प्रति भी मेरे मन में गौरव है।

२. उरुवेल सुत्त (द्वितीय)

२२. “भिक्षुओ, अभिसंबुद्ध होने के तुरंत बाद एक समय मैं नेरञ्‍जरा नदी तट पर अजपाल न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे, उरुवेला मेंविहार करता था। तबभिक्षुओ, बहुत से जरा-जीर्ण, वृद्ध, बूढ़े, बुजूर्ग, आयु-प्राप्त ब्राह्मण मेरे पास आये। आकर मेरे साथ कुशल-क्षेम की बातचीत की। कुशल-क्षेम पूछ चुकने पर एक ओर बैठ गये।भिक्षुओ, एक ओर बैठे हुए उन ब्राह्मणों ने मुझे यह कहा “हे गौतम! हमने सुना हैकि श्रमण गौतम न जरा-जीर्ण, वृद्धों, बूढ़ों, बुजूर्गों, आयु-प्राप्त ब्राह्मणों को अभिवादन करता है, न खड़े होकर आदर करता है, न उन्हें आसन देता है। हे गौतम! और ऐसा ही है। श्रमण गौतम न जरा-जीर्ण, वृद्धों, बूढ़ों, बुजुर्गों, आयुप्राप्त ब्राह्मणों को अभिवादन करता है, न खड़े होकर आदर करता है, न उन्हें आसन देता है। हे गौतम! यह उचित नहीं है।

तबभिक्षुओ, मेरे मन में यहविचार आयाकि ये आयुष्मान न तो यह जानते हैंकि स्थविर (ज्येष्‍ठ) कौन होता है और न यह जानते हैंकि स्थविर बनाने वाले धर्म कौन-से होते हैं?भिक्षुओ, चाहे कोई आयु से अस्सी वर्ष का, नब्बे वर्ष का या सौ वर्ष का बूढ़ा हो, लेकिन वह हो अकाल-वादी, अभूत (अयथार्थ)-वादी अनर्थ-वादी, अधर्म-वादी, अविनय-वादी, अवांछनीय (अस्वीकार्य) वाणी बोलने वालाजिसका समय नहीं, जो तर्क-संगत नहीं,जिसका कोई उद्देश्य नहीं, जो अनर्थकारी हो, तो वह (ऐसा ˉयक्ति) मूर्ख-स्थविर ही कहलाता है।

“औरभिक्षुओ, यदि (कोई ˉयक्ति) तरुण हो, युवा हो, लड़का हो, काले केशों वाला, भद्र यौवन से युक्त हो, आरंभिक आयु हो और वह हो काल-वादी, भूत (यथार्थ)-वादी, अर्थ-वादी, धर्म-वादी,विनय-वादी, स्वीकार्य वाणी बोलने वालाजिसका समय हो, जो तर्क-संगत हो,जिसका कोई उद्देश्य हो तथा जो अर्थ-कारी हो तो वह (ऐसा ˉयक्ति) पंडित-स्थविर ही कहलाता है।

“भिक्षुओ, ये चार स्थविर बनाने वाले धर्म (बातें) हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, यहां,भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष केनियमों के अनुसार चलने वाला, आचार-गोचर-युक्त, छोटे दोष में भी भय देखने वाला,शिक्षा-पदों को ग्रहण कर सीखने वाला; बहुश्रुत होता है, श्रुत-धर, श्रुत को संचित रखने वाला, जो धर्म आदि में कल्याणकारक है, मध्य में कल्याणकारक हैं, अंत में कल्याणकारक हैं, सार्थक हैं, स-व्यंजन हैं, केवल परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य के प्रकाशक हैं, वैसे धर्म को वह बहुत सुनता है, धारण करता है, वाणी से पठन करता है, मन द्वारा सम्यकरूप सेविचार करता है, (सम्यक) दृष्टि द्वारा भली प्रकार ज्ञात करता है। इसी जन्म में सुख का अनुभव देने वाले चारों कुशल-ध्यानों को सरलता से, सुविधा से, आसानी से प्राप्त कर लेने वाला होता है। आस्रवों का क्षय कर अनास्रव हो,चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञात कर, साक्षात कर, प्राप्त करविहार करता है।भिक्षुओ, ये चार स्थविर बनाने वाली बातें हैं।

“यो उद्धतेनचित्तेन, सम्फञ्‍च बहु भासति।

असमाहितसङ्कप्पो, असद्धम्मरतो मगो।

आरा सो थावरेय्यम्हा, पापदिट्ठि अनादरो॥

“यो च सीलेन सम्पन्‍नो, सुतवा पटिभानवा।

सञ्‍ञतो धीरो धम्मेसु, पञ्‍ञायत्थंविपस्सति॥

“पारगू सब्बधम्मानं, अखिलो पटिभानवा।

पहीनजातिमरणो, ब्रह्मचरियस्स केवली॥

“तमहं वदामि थेरोति, यस्स नो सन्ति आसवा।

आसवानं खयाभिक्खु, सो थेरोति पवुच्‍चती”ति॥

[जो व्यक्ति उद्धतचित्त से बहुत व्यर्थ बोलता है, जो असमाहित (चंचल) संकल्पों वाला है, जो असद्धर्म में रत है, जो पशु-समान है, वह पाप-दृष्टि वाले अनादृत मनुष्य ज्येष्‍ठपन (स्थविर कहलाने) से दूर है। जो शीलसंपन्‍न है, जो बहुश्रुत है, जो ज्ञानी है, जो धर्मों में संयत और धीर है, जो अपनी प्रज्ञा से अर्थ को देखता है, जो सभी धर्मों में पारंगत है, जो दोष-रहित है, जो मेधावी है, जो जन्म-मरण के बंधन से मुक्त है, जो संपूर्ण ब्रह्मचारी है,जिसके आस्रव नहीं हैं– मैं उसे स्थविर कहता हूं।जिसभिक्षु के आस्रव क्षय-प्राप्त हैं वही स्थविर कहलाता है।]

३. लोक सुत्त

२३. “भिक्षुओ, तथागत के द्वारा संसार (लोक) जानलिया गया है, तथागत लोक से मुक्त (विसंयुक्त) हैं;भिक्षुओ, तथागत के द्वारा लोक-समुदय (लोक की उत्पत्ति के कारण को) जानलिया गया है, तथागत का लोक-समुदय प्रहीण हो गया है;भिक्षुओ, तथागत के द्वारा लोक-निरोध जानलिया गया है, तथागत ने लोक-निरोध का साक्षात्कारकिया है;भिक्षुओ, तथागत के द्वारा लोक-निरोध-गामिनी-प्रतिपदा (मार्ग) जान ली गई है, तथागत द्वारा लोक-निरोध-गामिनी-प्रतिपदा भावित (परिवर्द्घित) है।

“भिक्षुओ, स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में, स-श्रमण-ब्राह्मण स-देव-मनुष्य जनता में जो कुछ भी दृष्ट है, श्रुत है, मुत (शेष इंद्रियों द्वारा अनुभूत) है,विज्ञात है, प्राप्त है, पर्येषित है, मन सेचिंतित है, वह सब तथागत द्वारा भली प्रकार जानलिया गया है। इसलिए वे ‘तथागत’ कहलाते हैं।

“भिक्षुओ,जिस रात तथागत अनुत्तर सम्यक संबोधि का लाभ करते हैं औरजिस रात तथागत अनुपादिशेष परिनिर्वाण प्राप्त करते हैं, इस बीच तथागत जो कुछ भाषण करते हैं, जो कुछ बोलते हैं, जो कुछनिर्देश करते हैं, वह सब वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं, इसलिए वे ‘तथागत’ कहलाते हैं।

“भिक्षुओ, तथागत जैसा बोलते हैं, वैसा करते हैं, जैसा करते हैं वैसा बोलते हैं। इस प्रकार तथागत यथावादी तथाकारी हैं और यथाकारी तथावादी हैं, इसलिए वे ‘तथागत’ कहलाते हैं।

“भिक्षुओ, स-मार, स-ब्रह्म लोक में, स-श्रमण-ब्राह्मण, स-देव मनुष्य जनता में तथागत दूसरों को अभिभूत बनाने वाले हैं, वेकिसी दूसरे के अभिभूत नहीं हैं, दसबलधारी हैं,वशवर्ती हैं– इसलिए वे ‘तथागत’ कहलाते हैं।

“सब्बं लोकं अभिञ्‍ञाय, सब्बं लोके यथातथं।

सब्बं लोकंविसंयुत्तो, सब्बलोके अनूपयो॥

“स वे सब्बाभिभू धीरो, सब्बगन्थप्पमोचनो।

फुट्ठ’स्स परमा सन्ति,निब्बानं अकुतोभयं॥

“एस खीणासवो बुद्धो, अनीघोछिन्‍नसंसयो।

सब्बकम्मक्खयं पत्तो,विमुत्तो उपधिसङ्खये॥

“एस सो भगवा बुद्धो, एस सीहो अनुत्तरो।

सदेवकस्स लोकस्स, ब्रह्मचक्‍कं पवत्तयी॥

“इति देवा मनुस्सा च, ये बुद्धा सरणं गता।

सङ्गम्म तं नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं॥

“दन्तो दमयतं सेट्ठो, सन्तो समयतं इसि।

मुत्तो मोचयतं अग्गो,तिण्णो तारयतं वरो॥

“इति हेतं नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं।

सदेवकस्मिं लोकस्मिं, नत्थि ते पटिपुग्गलो”ति॥

[सारे लोक (संसार) को अभिज्ञात कर, लोक में जो कुछ है वह सारा यथाभूत जानकर, सब लोक से मुक्त (विसंयुक्त), अनासक्त रहने वाले (बुद्घ), वही सब को अभिभूत करने वाले धीर पुरुष हैं, वही सब ग्रंथियों से मुक्त हैं, उन्होंने भय-रहित, परम शांति स्वरूपनिर्वाण को स्पर्श करलिया है। यह क्षीणास्रव बुद्ध हैं, यह अक्षुब्ध हैं, यह संशय-रहित हैं। यह सब कर्मों का क्षय कर चुके हैं, उपधि (जन्म-मरण का आधार)-क्षय करकेविमुक्त हैं। यह वह भगवान बुद्ध हैं, यह सर्वश्रेष्‍ठ सिंह हैं, इन्होंने स-देव लोक केलिए ब्रह्म-चक्र का प्रवर्तनकिया है। जो देव-मनुष्य बुद्ध की शरण गए हैं, वे इकट्ठे होकर उस महान बुद्धिमान को नमस्कार करते हैं। वे स्वयं दान्त हैं, दमन करने वालों में श्रेष्‍ठ हैं, शांत हैं, शमन करने वाले हैं, ऋषी हैं, मुक्त हैं, मुक्त करने वालों में अग्र हैं, उत्तीर्ण हैं, पार उतारने वालों में श्रेष्‍ठ हैं। इसलिए आप महावान बुद्धिमान को (सब) नमस्कार करते हैं। स-देव लोक में आपकी बराबरी कर सकने वाला कोई नहीं।]

४. कालकाराम सुत्त

२४. एक समय भगवान साकेत में कालकाराम मेंविहार करते थे। वहां भगवान नेभिक्षुओं को आमंत्रितकिया– “भिक्षुओ!” उनभिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचनदिया– “भदंत!” तब भगवान ने यह कहा–

“भिक्षुओ! स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में, स-श्रमण-ब्राह्मण स-देव-मनुष्य जनता में जो कुछ भी दृष्ट है, श्रुत है, मुत (शेष इंद्रियों द्वारा अनुभूत) है,विज्ञात है, प्राप्त है, पर्येषित है, मन सेचिंतित है, वह मैं जानता हूं।

“भिक्षुओ, स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में, स-श्रमण-ब्राह्मण स-देव-मनुष्य जनता में जो कुछ भी दृष्ट है, श्रुत है, मुत है,विज्ञात है, प्राप्त है, पर्येषित है, मन सेचिंतित है, वह मैंने अभिज्ञात करलिया है। यह सब तथागत कोविदित है, किंतु तथागत उसे अपनाते नहीं हैं (तथागत उसमें न तो तृष्णा पैदा करते हैं और नमिथ्यादृष्टि)।

“भिक्षुओ, यदि मैं यह कहूंकि जो कुछ भी स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में, स-श्रमण-ब्राह्मण स-देव-मनुष्य जनता में जो कुछ भी दृष्ट है, श्रुत है, मुत है,विज्ञात है, प्राप्त है, पर्येषित है, मन सेचिंतित है, वह सब मैं नहीं जानता हूं तो मेरा ऐसा कहना मृषावाद होगा।

“भिक्षुओ, यदि मैं यह कहूंकि … मैं जानता हूं और नहीं भी जानता हूं तो यह भी वैसा ही (मृषावाद) होगा।

“भिक्षुओ, यदि मैं यह कहूंकि … न तो जानता हूं और न नहीं जानता हूं तो यह मेरा दोष होगा।

“भिक्षुओ, द्रष्टव्य को देख कर तथागत दृष्ट की कल्पना नहीं करते, अदृष्ट की कल्पना नहीं करते, द्रष्टव्य की कल्पना नहीं करते, द्रष्टा की कल्पना नहीं करते (देखने में न तृष्णा होती है, न मान होता है और नमिथ्यादृष्टि); श्रोतव्य को सुन कर तथागत श्रुत की कल्पना नहीं करते, अश्रुत की कल्पना नहीं करते, श्रोतव्य की कल्पना नहीं करते, श्रोता की कल्पना नहीं करतेे; मोतव्य (शेष तीन इंद्रियों केविषय) को अनुभव कर तथागत मुत की कल्पना नहीं करते, अमुत की कल्पना नहीं करते, मोतव्य की कल्पना नहीं करते, मोता (अनुभव करने वाला)की कल्पना नहीं करतेे;विज्ञातव्य को जान कर तथागतविज्ञात की कल्पना नहीं करते, अविज्ञात की कल्पना नहीं करते,विज्ञातव्य की कल्पना नहीं करते,विज्ञाता की कल्पना नहीं करतेे। इस प्रकारभिक्षुओ,स्थित (तादी) तथागत का दृष्ट, श्रुत, मुत,विज्ञात धर्मों के प्रतिस्थिर (तादी) भाव ही है। मैं कहता हूंकिस्थिर-चित्त में उनसे श्रेष्‍ठतर वा प्रणीततर कोई नहीं है।

“यंकिञ्‍चिदिट्ठंव सुतं मुतं वा,

अज्झोसितं सच्‍चमुतं परेसं।

न तेसु तादी सयसंवुतेसु,

सच्‍चं मुसा वापि परं दहेय्य॥

“एतञ्‍च सल्‍लं पटिकच्‍चदिस्वा,

अज्झोसिता यत्थ पजाविसत्ता।

जानामि पस्सामि तथेव एतं,

अज्झोसितं नत्थि तथागतान”न्ति॥

[दूसरों द्वारा जो कुछ दृष्ट, श्रुत, मुत है उसे सत्य मान कर ग्रहण करने वालों के, स्वयं को संवृत घोषित करने वालों के (किसी भी) वचन को तथागत सत्य या मृषा नहीं मानते।

इसी शल्य (दृष्टि- शल्य) को पहले ही (बोधि प्राप्ति के समय) देख कर, जहां जनता आसक्तिपूर्वक बंधी हुई है; उसे मैं वैसे ही (यथाभूत) जानता हूं, देखता हूं। तथागतों कोकिसीविषय में आसक्ति नहीं होती है।]

५. ब्रह्मचर्य सुत्त

२५. “भिक्षुओ, यह जो श्रेष्‍ठ जीवन (ब्रह्मचर्य, गृहत्यागी का) है; यह जनता के सम्मुखदिखावे केलिए नहीं है; यह जनता के सम्मुख बात बनाने केलिए नहीं है, यह लाभ-सत्कार और प्रशंसा प्राप्त करने केलिए नहीं है, यह वाद करने केलिए नहीं है, यह इसलिए भी नहींकि लोग मुझे जान लें;भिक्षुओ, यह ब्रह्मचर्यवास संयम केलिए है, प्रहाण केलिए है,विराग केलिए है,निरोध केलिए है।

“संवरत्थं पहानत्थं, ब्रह्मचरियं अनीतिहं।

अदेसयि सो भगवा,निब्बानोगधगामिनं।

एस मग्गो महन्तेहि, अनुयातो महेसिभि॥

“ये च तं पटिपज्‍जन्ति, यथा बुद्धेन देसितं।

दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति, सत्थुसासनकारिनो”ति॥

[उन भगवान (बुद्ध) ने संवर केलिए, प्रहाण केलिए, यथार्थ (स्वयं अनुभव करने योग्य) ब्रह्मचर्य-वास की देशना उन लोगों को दी है जोनिर्वाण में डुबकी लगाना चाहते हैं। यह वह मार्ग हैजिसका महान महर्षियों ने अनुकरणकिया है। जो बुद्ध की देशनानुसार इस मार्ग पर चलते हैं, वे शास्ता के अनुशासन में रहने वाले लोग दुःख का अंत करेंगे।]

६. ढोंगी सुत्त

२६. “भिक्षुओ, जोभिक्षु ढोंगी होते हैं, जड़ होते है, बातूनी होते हैं, चालाक होते हैं, अभिमानी होते हैं, चंचल होते हैं, हेभिक्षुओ! वेभिक्षु मेरेभिक्षु नहीं होते।भिक्षुओ, वेभिक्षु इस धर्म-विनय से दूर चले गये होते हैं, वे इस धर्म-विनय में उन्‍नति, अभिवृद्धि तथाविपुलता नहीं प्राप्त करते।भिक्षुओ, जोभिक्षु ढोंगी नहीं होते, जड़ नहीं होते, बातूनी नहीं होते, पंडित होते हैं, सुसमाहित होते हैं,भिक्षुओ! वेभिक्षु मेरेभिक्षु होते हैं।भिक्षुओ, वेभिक्षु इस धर्म-विनय से दूर चले गये नहीं होते, वे इस धर्म-विनय में उन्‍नति, अभिवृद्धि तथाविपुलता प्राप्त करते हैं।

“कुहा थद्दा लपासिङ्गी, उन्‍नळा असमाहिता।

न ते धम्मेविरूहन्ति, सम्मासम्बुद्धदेसिते॥

“निक्‍कुहानिल्‍लपा धीरा, अत्थद्धा सुसमाहिता।

ते वे धम्मेविरूहन्ति, सम्मासम्बुद्धदेसिते”ति॥

[जो ढोंगी, जड़,बातूनी, चालाक, अभिमानी तथा चंचल होते हैं वे सम्यक संबुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म में उन्‍नति नहीं करते। जो ढोंगी नहीं होते, जड़ नहीं होते, बातूनी नहीं होते, धीर होते हैं, सुसमाहित होते हैं, वे सम्यक संबुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म में उन्‍नति करते हैं।]

७. संतुष्टि सुत्त

२७. “भिक्षुओ, ये चार चीजें (प्रमाण में) अल्प हैं, सुलभ हैं तथा वेनिर्दोष हैं। कौन-सी चार?भिक्षुओ, चीवरों में पांशुकूल चीवर अल्प होता है, सुलभ होता है तथानिर्दोष होता है।भिक्षुओ, भोजन में,भिक्षाटन से प्राप्त भोजन अल्प होता है, सुलभ होता है तथानिर्दोष होता है।भिक्षुओ, शयनासनों में वृक्ष के नीचे रहना अल्प है, सुलभ है तथानिर्दोष है।भिक्षुओ, औषधियों में मूत्र अल्प है, सुलभ है तथानिर्दोष है।भिक्षुओ, ये चार चीजें (प्रमाण में) अल्प हैं, सुलभ हैं तथानिर्दोष हैं।भिक्षुओ, जोभिक्षु अल्प से तथा सुलभ से संतुष्ट होता है, यह भी मैं उसके (श्रामण्य) श्रमण-भाव का एक अंग कहता हूं।

“अनवज्‍जेन तुट्ठस्स, अप्पेन सुलभेन च।

न सेनासनमारब्भ, चीवरं पानभोजनं।

विघातो होतिचित्तस्स,दिसा नप्पटिहञ्‍ञति॥

“ये चस्स धम्मा अक्खाता, सामञ्‍ञस्सानुलोमिका।

अधिग्गहिता तुट्ठस्स, अप्पमत्तस्ससिक्खतो”ति॥

(जोनिर्दोष, अल्प तथा सुलभ (चीजों) से संतुष्ट होता है, उसकेचित्त को शयनासन, चीवर, या खान-पान के संबंध में कष्ट नहीं होता, वहकिसी भीदिशा में आने-जाने में बाधा अनुभव नहीं करता। श्रामण्य के अनुकूल जो धर्म कहे गए हैं, वे उस संतोषी अप्रमादीभिक्षु को अधिगत हैं।)

८. आर्यवंश सुत्त

२८. “भिक्षुओ, ये चार आर्यवंश हैं जो श्रेष्‍ठ हैं, जो सुदीर्घ काल से हैं, जो वंशगत हैं, जो पुराने हैं,जिन में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझे हुए हैं और न उलझे हुए होंगे, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, एकभिक्षु जैसे तैसे चीवर से संतुष्ट होता है, जैसे-तैसे चीवर से संतुष्ट रहने का प्रशंसक होता है, वह चीवर केलिए अनुचित खोज नहीं करता, अनुचित प्रयास नहीं करता, चीवर के नमिलने परचिंतित नहीं होता, चीवरमिलने पर उसे अनासक्त होकर, अमूर्छित रहकर, तृष्णा-रहित होकर, उसके (तृष्णा के) दुष्परिणामों को देखता हुआ उसमें सेनिकलने की दृष्टि रखता हुआ उसका परिभोग करता है। वह उस जैसे-तैसे चीवर से संतुष्ट रहने के कारण न अपने को ऊंचा करकेदिखाता है, न दूसरों को नीचा करकेदिखाता है। जोभिक्षु वहां (उसविषय में) दक्ष होता है, आलस्य-रहित होता है, संप्रज्ञानी होता है तथा स्मृतिमान होता है,भिक्षुओ, यहभिक्षु पुराने, श्रेष्‍ठ आर्य-वंश मेंस्थित कहलाता है।

“फिरभिक्षुओ,भिक्षु जैसे-तैसे पिंड-पात (भिक्षा) से संतुष्ट होता है, जैसे-तैसे पिंड-पात से संतुष्ट रहने का प्रशंसक होता है, वह पिंड-पात केलिए अनुचित खोज नहीं करता, अनुचित प्रयास नहीं करता, पिंडपात के नमिलने परचिंतित नहीं होता, पिंडपातमिलने पर उसे अनासक्त होकर, अमूर्छित रहकर, तृष्णा-रहित होकर उसके दुष्परिणामों को देखता हुआ, उसमें सेनिकलने की दृष्टि रखता हुआ, उसका परिभोग करता है। वह उस जैसे-तैसे पिंड-पात से संतुष्ट रहने के कारण, न अपने को ऊंचा करकेदिखाता है, न दूसरों को नीचा करकेदिखाता है। जोभिक्षु वहां (उसविषय में) दक्ष होता है, आलस्य-रहित होता है, संप्रज्ञानी होता है तथा स्मृतिमान होता है,भिक्षुओ, यहभिक्षु पुराने, श्रेष्‍ठ आर्य-वंश मेंस्थित कहलाता है।

“फिरभिक्षुओ,भिक्षु जैसे-तैसे शयनासन (निवास-स्थानादि) से संतुष्ट होता है, जैसे-तैसे शयनासन से संतुष्ट रहने का प्रशंसक होता है, वह शयनासन केलिए अनुचित खोज नहीं करता, अनुचित प्रयास नहीं करता, शयनासन के नमिलने परचिंतित नहीं होता, शयनासनमिलने पर उसे अनासक्त होकर, अमूर्छित रहकर, तृष्णा रहित होकर उसके दुष्परिणामों को देखता हुआ, उसमें सेनिकलने की दृष्टि रखता हुआ परिभोग करता है, वह उस जैसे-तैसे शयनासन से संतुष्ट रहने के कारण, न अपने को ऊंचा करकेदिखाता है, न दूसरों को नीचा करकेदिखाता है। जोभिक्षु वहां (उसविषय में) दक्ष होता है, आलस्य-रहित होता है, संप्रज्ञानी होता है तथा स्मृतिमान होता है,भिक्षुओ, यहभिक्षु पुराने, श्रेष्‍ठ आर्य-वंश मेंस्थित कहलाता है।

“फिरभिक्षुओ,भिक्षु भावना में आनंद लेने वाला होता है, भावना में रत; प्रहाण में आनंद लेने वाला होता है, प्रहाण में रत; उस भावना में आनंद लेने के कारण, भावना में रत होने के कारण; प्रहाण-में आनंद लेने के कारण, प्रहाण में रत रहने के कारण, वह न अपने को ऊंचा करकेदिखाता है, न दूसरे को नीचा करकेदिखाता है । जोभिक्षु वहां (उसविषय में) दक्ष होता है, आलस्य-रहित होता है, संप्रज्ञानी होता है तथा स्मृतिमान होता है,भिक्षुओ, यहभिक्षु पुराने, श्रेष्‍ठ आर्य-वंश मेंस्थित कहलाता है।

“भिक्षुओ, ये चार आर्यवंश हैं जो श्रेष्‍ठ हैं, जो सुदीर्घ काल से हैं, जो वंशगत हैं, जो पुराने हैं,जिन में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझे हुए हैं और न उलझे हुए होंगे, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित हैं।भिक्षुओ, इन चारों आर्य-वंशों से युक्तभिक्षु यदि पूर्वदिशा मेंविहार करता है तो वही ‘अरति’ (असंतुष्टि) को जीत लेता है, उसे ‘अरति’ नहीं जीतती; यदि पश्चिमदिशा में भीविहार करता है तो वही ‘अरति’ को जीत लेता है, उसे ‘अरति’ नहीं जीतती; उत्तरदिशा में भीविहार करता है तो वही ‘अरति’ को जीत लेता है, उसे ‘अरति’ नहीं जीतती; यदि दक्षिणदिशा में भीविहार करता है तो वही ‘अरति’ को जीत लेता है, उसे ‘अरति’ नहीं जीतती।भिक्षुओ, यहकिसलिए? ‘अरति’ और ‘रति’ को (राग और द्वेष को) जीतने वाला ही ‘धीर’ होता है।

“नारति सहति धीरं, नारति धीरं सहति।

धीरोव अरतिं सहति, धीरोहि अरतिस्सहो॥

“सब्बकम्मविहायीनं, पनुण्णं कोनिवारये।

नेक्खं जम्बोनदस्सेव, को तंनिन्दितुमरहति।

देवापि नं पसंसन्ति, ब्रह्मुनापि पसंसितो”ति॥

(क्योंकि ‘अरति’ धीर को नहीं जीतती, धीर को ‘अरति’ नहीं हराती; धीर पुरुष ही अरति को जीतता है, धीर ही ‘अरति’ को हराने वाला होता है।

जिसने सब कामों को छोड़दिया,जिसने सब को त्यागदिया, उसे कौन रोक सकता है? जंबुनद स्वर्ण केनिष्क समान उसकी कौन निंदा कर सकता है, देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, ब्रह्मा द्वारा भी वह प्रशंसित होता है।)

९. धर्मपद सुत्त

२९. “भिक्षुओ, ये चार धर्मपद हैं, जो श्रेष्‍ठ हैं, जो सुदीर्घ काल से हैं, जो वंशगत हैं, जो पुराने हैं,जिन में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझे हुए हैं और न उलझे हुए होंगे, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित हैं। कौन-से चार?

“भिक्षुओ, अलोभ धर्मपद श्रेष्‍ठ है, सुदीर्घ काल से है, वंशगत है, पुराना है,जिस में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझा हुआ हैऔर न उलझा हुआ होगा, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित है।

“भिक्षुओ, अक्रोध (अव्यापाद) धर्मपद श्रेष्‍ठ है, सुदीर्घ काल से है, वंशगत है, पुराना है,जिस में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझा हुआ है और न उलझा हुआ होगा, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित है।

“भिक्षुओ, सम्यक-स्मृति धर्मपद श्रेष्‍ठ है, सुदीर्घ काल से है, वंशगत है, पुराना है,जिस में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझा हुआ है और न उलझा हुआ होगा, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित है।

“भिक्षुओ, सम्यक-समाधि धर्मपद श्रेष्‍ठ है, सुदीर्घ काल से है, वंशगत है, पुराना है,जिस में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझा हुआ है और न उलझा हुआ होगा, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित है।

“भिक्षुओ, ये चार धर्मपद हैं, जो श्रेष्‍ठ हैं, जो सुदीर्घ काल से हैं, जो वंशगत हैं, जो पुराने हैं,जिन में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझे हुए हैं और न उलझे हुए होंगे, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित हैं।

“अनभिज्झालुविहरेय्य, अब्यापन्‍नेन चेतसा।

सतो एकग्गचित्तस्स, अज्झत्तं सुसमाहितो”ति॥

[लोभ-रहित, द्वेÏा-रहितचित्त से, स्मृतिमान, एकाग्र-चित्त,भीतर से सुसमाहित होकरविहार करे।]

१०. परिव्राजक सुत्त

३०. एक समय भगवान राजगृह मेंे, गृध्रकूट पर्वत परविहार करते थे। उस समय बहुत से प्रसिद्ध परिव्राजक जैसे अन्‍नभार, वरधर, सकुलुदायि– तथा अन्य भी प्रसिद्ध परिव्राजक सर्पिणी (नदी) के तट पर परिव्राजकाराम में रहते थे। ध्यान कर चुकने के बाद शाम को भगवान सर्पिणी केकिनारे परिव्राजकाराम गए। जाकरबिछे आसन पर बैठे। बैठकर भगवान ने उन परिव्राजकों को यह कहा-

‘हे परिव्राजको! ये चार धर्मपद हैं, जो श्रेष्‍ठ हैं, जो सुदीर्घ काल से हैं, जो वंशगत हैं, जो पुराने हैं,जिन में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझे हुए हैं और न उलझे हुए होंगे, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित हैं। कौन-से चार?हे परिव्राजको! अलोभ धर्मपद श्रेष्‍ठ है, सुदीर्घ काल से है, वंशगत है, पुराना है,जिस में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझा हुआ है और न उलझा हुआ होगा, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित है। हे परिव्राजको! अक्रोध (अव्यापाद) धर्मपद ...हे परिव्राजको! सम्यक-स्मृति धर्मपद ...हे परिव्राजको! सम्यक-समाधि धर्मपद श्रेष्‍ठ है, सुदीर्घ काल से है, वंशगत है, पुराना है,जिस में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझा हुआ है और न उलझा हुआ होगा, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित है। हे पारिव्राजको! ये चार धर्मपद हैं, जो श्रेष्‍ठ हैं, जो सुदीर्घ काल से हैं, जो वंशगत हैं, जो पुराने हैं,जिन में पहले सेमिलावट नहीं है और न अभी है, जो न उलझे हुए हैं और न उलझे हुए होंगे, जोविज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित हैं।

“हे परिव्राजको! जो कोई ऐसा कहेगाकि मैं इस अलोभ धर्मपद कानिषेध कर (उसका त्याग कर) ऐसे (सही) श्रमण या ब्राह्मण को प्रज्ञप्त करूंगा जो अभिज्झालु (लोभी) है और काम के प्रति तीव्र आसक्ति रखता है; तो मैं उसे कहूंगाकि वह आए, बोले, बातचीत करे, मैं उसका प्रताप देखता हूं। हे परिव्राजको! सचमुच इसकी संभावना नहीं हैकि वह अलोभ धर्मपद कानिषेध कर ऐसे (सही) श्रमण या ब्राह्मण को प्रज्ञप्त करे जो लोभी हो तथा कामों के प्रति तीव्र आसक्ति रखता हो।

“हे परिव्राजको! जो कोई ऐसा कहेगाकि मैं इस अक्रोध (अव्यापाद) धर्मपद कानिषेध कर (उसका त्याग कर) ऐसे (सही) श्रमण या ब्राह्मण को प्रज्ञप्त करूंगा जो क्रोधी हो, जो द्वेष-युक्त संकल्पों वाला हो; तो मैं उसे कहूंगाकि वह आए, बोले, बातचीत करे, मैं उसका प्रताप देखता हूं। हे परिव्राजको! सचमुच इसकी संभावना नहीं हैकि वह अक्रोध (अव्यापाद) धर्मपद कानिषेध कर ऐसे (सही) श्रमण या ब्राह्मण को प्रज्ञप्त करे जो क्रोधी हो, जो द्वेष-युक्त संकल्पों वाला हो।

“हे परिव्राजको! जो कोई ऐसा कहेगाकि मैं इस सम्यक स्मृति धर्मपद कानिषेध करऐसे (सही) श्रमण या ब्राह्मण को प्रज्ञप्त करूंगा जो मूढ़-स्मृति हो, जो असंप्रज्ञानी हो; तो मैं उसे कहूंगाकिवह आए, बोले, बातचीतकरे, मैं उसका प्रताप देखता हूं। हे परिव्राजको! सचमुचइसकी संभावना नहीं हैकि वह सम्यक-स्मृति धर्म-पद कानिषेधकर ऐसे (सही) श्रमण या ब्राह्मण को प्रज्ञप्त करेजो मूढ़-स्मृति हो, जो असंप्रज्ञानीहो।

“हे परिव्राजको! जो कोई ऐसा कहेगाकि मैं इस सम्यक-समाधि धर्मपद कानिषेध कर ऐसे (सही) श्रमण या ब्राह्मण को प्रज्ञप्त करूंगा जो एकाग्र-चित्त न हो, जो भ्रांत-चित्त हो; तो मैं उसे कहूंगाकि वह आए, बोले, बातचीत करे, मैं उसका प्रताप देखता हूं। हे परिव्राजको! सचमुच इसकी संभावना नहीं हैकि वह सम्यक-समाधि धर्मपद कानिषेध कर ऐसे (सही) श्रमण या ब्राह्मण को प्रज्ञप्त करे जो एकाग्र-चित्त न हो, जो भ्रांत-चित्त हो।

“हे परिव्राजको! जो इन चारों धर्मपदों को गर्हित, बुरा-भला कहने योग्य मानता है, वह इसी जीवन में चार अधार्मिक, आलोच्य, निंदनीय मतों का मानने वाला हो जाता है। कौन-से चार? यदि वह अलोभ धर्मपद की गर्हा करता है,(उसे) बुरा-भला कहता है तो जो श्रमण-ब्राह्मण लोभी हैं, काम-भोगों के प्रति तीव्र रागी हैं, वे श्रमण-ब्राह्मण ही उसकेलिए पूजनीय बन जाते हैं, वे श्रमण-ब्राह्मण ही उसके द्वारा प्रशंसित हो जाते हैं।

“यदि वह अक्रोध धर्मपद की गर्हा करता है,(उसे) बुरा-भला कहता है तो जो श्रमण-ब्राह्मण क्रोधी हैं, द्वेष-युक्त संकल्पों वाले हैं, वे श्रमण-ब्राह्मण ही उसकेलिए पूजनीय बन जाते हैं, वे श्रमण-ब्राह्मण ही उसके द्वारा प्रशंसित हो जाते हैं।

“यदि वह सम्यक-स्मृति धर्मपद की गर्हा करता है,(उसे) बुरा-भला कहता है तो जो श्रमण-ब्राह्मण मूढ़-स्मृति हैं, असंप्रज्ञानी हैं, वे श्रमण-ब्राह्मण ही उसकेलिए पूजनीय बन जाते हैं, वे श्रमण-ब्राह्मण ही उसके द्वारा प्रशंसित हो जाते हैं।

“यदि वह सम्यक-समाधि धर्मपद की गर्हा करता है,(उसे) बुरा-भला कहता है तो जो श्रमण-ब्राह्मण एकाग्र-चित्त न हों, भ्रांतचित्त हों, वे श्रमण-ब्राह्मण ही उसकेलिए पूजनीय बन जाते हैं, वे श्रमण-ब्राह्मण ही उसके द्वारा प्रशंसित हो जाते हैं।

“हे परिव्राजको! जो इन चारों धर्मपदों को गर्हित, बुरा-भला कहने योग्य मानता है, वह इसी जीवन में इन चार अधार्मिक, आलोच्य, निंदनीय मतों का मानने वाला हो जाता है। “हे परिव्राजको! उत्कल में रहने वाले वस्स और भञ्‍ञ– जो अहेतुवादी हैं, अक्रिया-वादी हैं, नास्तिक (नास्ति-वादी) हैं, उन्होंने भी इन चारों धर्मपदों की निंदा नहीं की, बुरा-भला नहीं कहा। यहकिसलिए? निंदा, क्रोध तथा उपालंभ के भय से।

“अब्यापन्‍नो सदा सतो, अज्झत्तं सुसमाहितो।

अभिज्झाविनयेसिक्खं, अप्पमत्तोति वुच्‍चती”ति॥

[अक्रोधी, सदा-स्मृतिमान, अपने में एकाग्र-चित्त, लोभ के वशीभूत न होने वाला,शिक्षाकामी (शैक्ष) ही ‘अप्रमादी’ कहलाता है।]

४. चक्र वर्ग

१. चक्र सुत्त

३१. “भिक्षुओ, ये चार चक्‍के हैंजिनसे युक्त देवमनुष्यों का जीवन (चतुचक्र) चलता है,जिनसे युक्त देवमनुष्य थोड़े ही समय में भोग्य-पदार्थो केविषय में प्रचुरता औरविपुलता को प्राप्त होते हैं। कौन-से चार? अनुकूल (प्रतिरूप) देशवास, सत्पुरुष-आश्रय, अपनेविषय में सम्यक संकल्प और पूर्व (-जन्म में) कृत पुण्य-कर्म।भिक्षुओ, ये चार चक्‍के हैंजिनसे युक्त देवमनुष्यों का जीवन चलता है,जिनसे युक्त देवमनुष्य थोडे ही समय में भोग्य-पदार्थों केविषय में प्रचुरता औरविपुलता को प्राप्त होते हैं।

“पतिरूपे वसे देसे, अरियमित्तकरोसिया।

सम्मापणिधिसम्पन्‍नो, पुब्बे पुञ्‍ञकतो नरो।

धञ्‍ञं धनं यसोकित्ति, सुखञ्‍चेतंधिवत्तती”ति॥

[कोई आदमी अनुकूल देश में रहता है, आर्य-मित्र (कल्याण-मित्र) बनाता है, जो अपनेविषय में सम्यक संकल्प करता है,जिसने पूर्व (-जन्म में) पुण्य-कर्मकिए हैं, ऐसे आदमी का धान्य, धन, यश, कीर्ति तथा सुख बढ़ता है।)

२. संग्रह सुत्त

३२. “भिक्षुओ, ये चार संग्रह करने योग्य वस्तुएं हैं। कौन-सी चार? दान,प्रिय-वचन,हितकारी आचरण तथा समानता का व्यवहार।भिक्षुओ, ये चार संग्रह करने योग्य वस्तुुएं हैं।

“दानञ्‍च पेय्यवज्‍जञ्‍च, अत्थचरिया च या इध।

समानत्तता च धम्मेसु, तत्थ तत्थ यथारहं।

एते खो सङ्गहा लोके, रथस्साणीव यायतो॥

“एते च सङ्गहा नास्सु, न माता पुत्तकारणा।

लभेथ मानं पूजं वा,पिता वा पुत्तकारणा॥

“यस्मा च सङ्गहा एते, समवेक्खन्ति पण्डिता।

तस्मा महत्तं पप्पोन्ति, पासंसा च भवन्ति ते”ति॥

(दान,प्रिय-वचन,हितकारी आचरण तथा यथायोग्य समानता का व्यवहार– ये लोक में चार संग्रह करने योग्य वस्तुुएं है, वैसी ही जैसी चलते हुए रथ की आणी।

यदि ये संग्रह करने योग्य वस्तुएं न हों, तो न पुत्र से माता को ही अथवापिता को ही मान या पूजामिले। क्योंकि पंडित-जन इन संग्रह-वस्तुओं का ध्यान रखते हैं, इसीलिए वे महत्व को प्राप्त होते हैं तथा प्रशंसा के योग्य होते हैं।)

३. सिंह सुत्त

३३. “भिक्षुओ, शाम के समय मृगराज सिंह अपनी गुफा में सेनिकलता है। वह गुफा में सेनिकल कर जम्हाई लेता है। जम्हाई लेकर चारों ओर देखता है। चारों ओर देखकर तीन बार सिंह-नाद करता है। तीन बार सिंह-नाद करकेशिकार केलिएनिकलता है।भिक्षुओ, जो भी पशु-प्राणी मृगराज सिंह को दहाड़ते हुए सुनते हैं वे प्रायः भयभीत हो जाते हैं, बेचैन और संत्रस्त हो जाते हैं।बिल में रहने वालेबिल में घुस जाते हैं, पानी में रहने वाले पानी में घुस जाते हैं, वन में रहने वाले वन में घुस जाते हैं, पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं।भिक्षुओ, ग्राम-निगम-राजधानियों में राजा के जो हाथी बड़े मजबूत रस्सों से बंधे रहते हैं, वे भी उन बंधनों को तोड़कर, डर के मारे पेशाब-पाखाना करते हुए जहां-तहां भाग जाते हैं।भिक्षुओ, पशु-प्राणियों केलिये मृगराज सिंह ऐसा महाऋद्धिमान होता है, ऐसा महाशक्तिशाली होता है, ऐसा महाप्रतापवान होता है।

“इसी प्रकारभिक्षुओ, जब अर्हत, सम्यक संबुद्ध,विद्याचरण संपन्‍न, सुगत, लोक के जानकार, अनुत्तर, पुरुषों का दमन करने केलिए सारथी-समान, देव-मनुष्यों के शास्ता भगवान बुद्ध, तथागत लोक में उत्पन्‍न होते हैं, तो वे धर्मोपदेश देते हैंकि यह ‘सत्काय’ (मैं) है, यह ‘सत्काय’ का समुदय है, यह ‘सत्काय’ कानिरोध है, यह ‘सत्काय’ केनिरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है।भिक्षुओ, जो दीर्घायु, वर्णवान सुख-बहुल,चिरकाल से ऊँचे-ऊँचेविमानों में रहने वाले देवता हैं वे भी तथागत की धर्म-देशना सुनकर प्रायः भयभीत हो जाते हैं, बेचैन और संत्रस्त हो जाते हैं। वे सोचते हैं– हमने ‘अनित्य’ होकर अपने आपको ‘नित्य’ माना, ‘अध्रुव’ होकर अपने आपको ‘ध्रुव’ माना, ‘अशाश्वत’ होकर अपने आपको ‘शाश्वत’ माना। हम भी ‘अनित्य’ हैं, ‘अध्रुव’ है, ‘अशाश्वत’ हैं, ‘सत्काय’ के अंतर्गत हैं।भिक्षुओ, स-देव लोक में तथागत इतने महाऋद्धिमान हैं, इतने महाशक्तिशाली हैं, इतने महान प्रतापवान हैं।

“यदा बुद्धो अभिञ्‍ञाय, धम्मचक्‍कं पवत्तयी।

सदेवकस्स लोकस्स, सत्था अप्पटिपुग्गलो॥

“सक्‍कायञ्‍चनिरोधञ्‍च, सक्‍कायस्स च सम्भवं।

अरियञ्‍चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥

“येपि दीघायुका देवा, वण्णवन्तो यसस्सिनो।

भीता सन्तासमापादुं, सीहस्सेवि’तरेमिगा॥

“अवीतिवत्ता सक्‍कायं, अनिच्‍चाकिर भो मयं।

सुत्वा अरहतो वाक्यं,विप्पमुत्तस्स तादिनो”ति॥

[देवों सहित समस्त लोक के शास्ता, अतुलनीय बुद्ध ने जब अभिज्ञान प्राप्त कर धर्मचक्र प्रवर्तितकिया (अर्थात) ‘सत्काय’, ‘सत्काय’ का समुदय, (‘सत्काय’ का)निरोध और दुःख के उपशमन की ओर ले जाने वाला आर्य अष्टांगिक मार्ग प्रकाशितकिया, तोजितने भी दीर्घायु, कांतिमान,विख्यात देव थे वे भयभीत हो गये, संत्रस्त हो गये जैसे सिंह से इतर पशु। उनके जैसेविप्रमुक्त अर्हत के वाक्य सुनकर उन्होंने सोचाकि हम भी ‘सत्काय’ के पार नहीं हुए हैं, हम भी ‘अनित्य’ ही हैं।]

४. अग्र प्रसन्‍नता सुत्त

३४. “भिक्षुओ, ये चार अग्र प्रसन्‍नताएं (प्रसाद) हैं। कौन-सी चार?भिक्षुओ,जितने भी प्राणी हैं, अपद,द्विपद, चतुष्पद, बहुपद, रूपी, अरूपी, संज्ञी, असंज्ञी अथवा नेवसंज्ञीनासंज्ञी, उनमें तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध ही अग्र कहलाते हैं।भिक्षुओ, जो बुद्ध के प्रति श्रद्धावान (प्रसन्‍न) हैं, वे ‘अग्र’ के प्रति श्रद्धावान हैं। जो ‘अग्र’ में श्रद्धावान हैं, उन्हें ‘अग्र’ फल का ही लाभमिलता है।

“भिक्षुओ,जितने भी संस्कृत धर्म हैं, आर्य अष्टांगिक मार्ग उनमें अग्र कहलाता है।भिक्षुओ, जो आर्य अष्टांगिक-मार्ग में श्रद्धावान हैं, वे ‘अग्र’ में श्रद्धावान हैं। जो ‘अग्र’ में श्रद्धावान हैं, उन्हें ‘अग्र’ फल का ही लाभमिलता है।

“भिक्षुओ,जितने भी संस्कृत वा असंस्कृत धर्म हैं, ‘विराग’ उन सब में ‘अग्र’ कहलाता है, जोकि मद का मर्दन करने वाला है,पिपासा को शांत करने वाला है, आसक्ति का नाश करने वाला है, (भवचक्र का) उच्छेद करने वाला है, तृष्णा का क्षय करने वाला है, वैराग्य-स्वरूप है,निरोध-स्वरूप है,निर्वाण है।भिक्षुओ, जोविरागधर्म नें ‘श्रद्धावान’ हैं, वे ‘अग्र’ में श्रद्धावान हैं। जो ‘अग्र’ में श्रद्धावान हैं, उन्हें ‘अग्र’ फल का ही लाभमिलता है।

“भिक्षुओ,जितने भी ‘संघ’ वा ‘गण’ हैं, तथागत का श्रावक-संघ उनमें ‘अग्र’ कहलाता है, जोकि ये चार पुरुष-युगल अर्थात आठ प्रकार के पुद्गल हैं, यही भगवान का श्रावक संघ है, आदर करने योग्य, पहुनाई करने योग्य, दक्षिणा देने योग्य, हाथ जोड़ने योग्य तथा लोक में श्रेष्‍ठ पुण्य-क्षेत्र हैं।भिक्षुओ, जो संघ के प्रति ‘श्रद्धावान’ हैं, वे ‘अग्र’ में श्रद्धावान हैं। जो ‘अग्र’ में श्रद्धावान हैं, उन्हें ‘अग्र’ फल का ही लाभमिलता है।भिक्षुओ, ये चार अग्र प्रसन्‍नताएं (प्रसाद) हैं।

“अग्गतो वे पसन्‍नानं, अग्गं धम्मंविजानतं।

अग्गे बुद्धे पसन्‍नानं, दक्खिणेय्ये अनुत्तरे॥

“अग्गे धम्मे पसन्‍नानं,विरागूपसमे सुखे।

अग्गे सङ्घे पसन्‍नानं, पुञ्‍ञक्खेत्ते अनुत्तरे॥

“अग्गस्मिं दानं ददतं, अग्गं पुञ्‍ञं पवड्ढति।

अग्गं आयु च वण्णो च, यसोकित्ति सुखं बलं॥

“अग्गस्स दाता मेधावी, अग्गधम्मसमाहितो।

देवभूतो मनुस्सो वा, अग्गप्पत्तो पमोदती”ति॥

[जो अग्र (श्रेष्‍ठ) में श्रद्धावान हैं, जो अग्र (श्रेष्‍ठ) धर्म के जानकार हैं, जो अग्र (श्रेष्‍ठ) बुद्ध के प्रति श्रद्धावान हैं, जो अनुत्तर (सर्वश्रेष्‍ठ) दक्षिणार्ह संघ के प्रति श्रद्धावान हैं, जोविराग-स्वरूप, उपशमनकारक, सुखदायक अग्र (श्रेष्‍ठ) धर्म के प्रति श्रद्धावान हैं, जो अनुत्तर पुण्य-क्षेत्र संघ के प्रति जो श्रद्धावान हैं, वे जब अग्र संघ को दान देते हैं उनके अग्र पुण्य में वृद्धि होती है और उसकी आयु, वर्ण, यश, कीर्ति, सुख तथा बल सब अग्र (अच्छा) होता है। जो अग्र (श्रेष्‍ठ) को देने वाला, मेधावी पुरुष है, जो अग्र धर्म में समाहित है, वह देव-योनि या मनुष्य-योनि में पैदा हो, अग्र फल को प्राप्त कर आनंदित होता है।]

५. वस्सकार सुत्त

३५. एक समय भगवान राजगृह में, वेळुवन के कलन्दकनिवाप मेंविहार करते थे। तब मगध का महा-अमात्य वस्सकार ब्राह्मण भगवान के पास आया। पास आकर भगवान के साथ कुशल क्षेम की बातचीत की। कुशल क्षेम की बातचीत हो चुकने पर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस मगध के महा-अमात्य वस्सकार ब्राह्मण ने भगवान से यह कहा–

“हे गौतम! जो कोई इन चार गुणों से युक्त होता है, उसे हम महाप्रज्ञावान महापुरुष कहते हैं। कौन-से चार? हे गौतम! वह बहुश्रुत होता है; वह उस उस श्रुत (विषयों) का, उस उस कथन का अर्थ जानता है- ‘इस कथन का यह अर्थ है और इस कथन का यह अर्थ है’; वह स्मृतिमान होता हैचिर-कृत,चिर-भाषित की भी स्मृति बनी रहती है; जो गृहस्थों के गृहस्थकार्य हैं, उनकेविषय में वह दक्ष होता है, आलस्य-रहित, उनकेविषय में उपाय-कुशल होता है, आलोचना-कुशल, (कार्य) करने में समर्थ, व्यवस्था करने में समर्थ। हे गौतम! जो इन चार गुणों से युक्त होता है, उसे हम महाप्रज्ञावान महापुरुष कहते हैं? हे गौतम! यदि मेरा कथन अनुमोदन करने योग्य है तो आप गौतम इसका अनुमोदन करें, यदिनिषेध करने योग्य हो तो आप गौतम इसकानिषेध करें।”

“हे ब्राह्मण! मैं तुम्हारा न समर्थन करता हूं और ननिषेध करता हूं। किंतु हे ब्राह्मण! मैं चार गुणों से युक्त को महाप्रज्ञावान महापुरुष कहता हूं। कौन-से चार? हे ब्राह्मण! वह बहुतजनों केहित में तथा बहुतजनों के सुख में लगा होता है, उसके द्वारा बहुत सी जनता कल्याण-पथपर, कुशल-पथपर, आर्य-धर्म में प्रतिष्‍ठित होती है; वह जोविकल्प मन में उठाना चाहता है, वहविकल्प मन में उठाता है; जोविकल्प मन में उठाना नहीं चाहता, वहविकल्प मन में नहीं उठाता है; जो संकल्प मन में उठाना चाहता है, वह संकल्प मन में उठाता है, जो संकल्प मन में उठाना नहीं चाहता, वह संकल्प मन में नहीं उठाता है; इस प्रकार वह संकल्प-विकल्पों केविषय मेंचित्त का स्वामी होता है; उसे चारों चैतसिक ध्यान, जो इसी जीवन में सुखविहार हैं, सुविधा से प्राप्त रहते हैं, अनायास प्राप्त रहते हैं, सरलता से प्राप्त रहते है; वह आस्रवों का क्षय कर अनास्रवचित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं साक्षात कर, प्राप्त करविहार करता है। हे ब्राह्मण! मै तुम्हारा न समर्थन करता हूं और ननिषेध करता हूं। किंतु हे ब्राह्मण! मैं इन चार गुणों से युक्त को महाप्रज्ञावान महापुरुष कहता हूं।”

“आश्चर्य है, हे गौतम! अद्भुत है, हे गौतम! आप गौतम ने क्या सुभाषित कहा है! हम आप गौतम को ही इन चार गुणों से युक्त जानते हैं। आप गौतम ही बहुतजनों केहित में, बहुतजनों के सुख मेंलगे हैं; आपके ही द्वारा बहुत सी जनता कल्याण-पथ पर, कुशल-पथ पर, आर्य-धर्म में प्रतिष्‍ठित हुई है; आप ही जोविकल्प मन में उठाना चाहते हैं, वेविकल्प मन में उठाते हैं; जोविकल्प मन में उठाना नहीं चाहते, वहविकल्प मन में नहीं उठाते हैं; जो संकल्प मन में उठाना चाहते हैं, वह संकल्प मन में उठाते हैं; जो संकल्प मन में उठाना नहीं चाहते, वह संकल्प मन में नहीं उठाते हैं; इस प्रकार आप गौतम संकल्प-विकल्पों केविषय मेंचित्त के स्वामी हैं; आपको चारों चैतसिक ध्यान, जो इसी जीवन में सुखविहार हैं, सुविधा से प्राप्त हैं, अनायास प्राप्त हैं, सरलता से प्राप्त हैं, आप आस्रवों का क्षय कर अनास्रवचित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं साक्षात कर, प्राप्त करविहार करते हैं।”

“निश्चय ही ब्राह्मण! तूने ठीक बात कही है। लेकिन तो भी मैं तुझे यह समझाकर कहता हूं। ब्राह्मण! मैं ही बहुतजनों केहित में, बहुतजनों के सुख में लगा हूं; मेरे ही द्वारा बहुत सी जनता कल्याण-पथ पर, कुशल-पथ पर, आर्य-धर्म में प्रतिष्‍ठित हुई है। मैं ही जोविकल्प मन में उठाना चाहता हूं वहविकल्प मन में उठाता हूं; जोविकल्प मन में उठाना नहीं चाहता, वहविकल्प मन में नहीं उठाता हूं; जो संकल्प मन में उठाना चाहता हूं, वह संकल्प मन में उठाता हूं; जो संकल्प मन में उठाना नहीं चाहता, वह संकल्प मन में नहीं उठाता हूं; इस प्रकार संकल्प-विकल्पों केविषय मेंचित्त का स्वामी हूं; मुझे चारों चैतसिक ध्यान, जो इसी जीवन में सुखविहार हैं, सुविधा से प्राप्त हैं, अनायास प्राप्त हैं, सरलता से प्राप्त हैं; मै आस्रवों का क्षय कर अनास्रवचित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं साक्षात कर, प्राप्त कर,विहार करता हूं।

“यो वेदि सब्बसत्तानं, मच्‍चुपासप्पमोचनं।

हितं देवमनुस्सानं, ञायं धम्मं पकासयि।

यं वेदिस्वा च सुत्वा च, पसीदन्ति बहू जना॥

“मग्गामग्गस्स कुसलो, कतकिच्‍चो अनासवो।

बुद्धो अन्तिमसारीरो, महापञ्‍ञो महापुरिसोति वुच्‍चती”ति॥

(जो ज्ञानी हैं,जिन्होंने सब प्राणियों को मृत्युपाश से मुक्त करने वाले, देव-मनुष्यों केहितकर, सम्यक-धर्म को प्रकाशितकिया है,जिन्हें देखकर तथाजिनका उपदेश सुनकर बहुतजन प्रसन्‍न होते हैं, जो मार्ग-अमार्ग केविषय में कुशल हैं, जो कृतकृत्य हैं, जो अनास्रव हैं, जो अंतिम शरीरधारी बुद्ध हैं, ये महाप्रज्ञ, महापुरुष कहलाते हैं।)

६. दोण सुत्त

३६. एक समय भगवान उक्‍कट्ठ तथा सेतव्य के बीच रास्ते से जा रहे थे। द्रोण ब्राह्मण भी उक्‍कट्ठ तथा सेतव्य के बीच रास्ते से जा रहा था। द्रोण ब्राह्मण ने देखाकि भगवान के पैरों में हजारो आरे सहित, नेमि सहित, नाभि सहित, सभी तरह से परिपूर्ण चक्र हैं। उसने देखकर यह सोचा– ‘अरे! यह आश्चर्य है, अरे! यह अद्भुत है। यह मनुष्य के पैर नहीं हों सकते।

तब भगवान मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे पालथी मारकर, शरीर को सीधा कर तथा मुख के ऊपरी स्थान पर सति स्थापित कर बैठ गए। भगवान के चरण-चिन्हों का अनुगमन करते हुए द्रोण ब्राह्मण ने प्रसन्‍न, प्रसन्‍न-मुद्रा में शांतेंद्रिय, शांत-मन, उत्तम-दमन-शमन-युक्त, दान्त, संयतेंद्रिय, रक्षितेंद्रिय आर्य पुरुष भगवान को एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ देखा। उन्हें देखकर वह भगवान के पास गया, पास जाकर उसने भगवान से यह कहा–

“आप तो देवता होंगे (हैं न)?”

“ब्राह्मण! मैं देवता नहीं होऊंगा (बनूंगा)।”

“आप तो गंधर्व होंगे (हैं न)?”

“ब्राह्मण! मैं गंधर्व नहीं होऊंगा (बनूंगा)।”

“आप तो यक्ष होंगे (हैं न)?”

“ब्राह्मण! मैं यक्ष नहीं होऊंगा (बनूंगा)।”

“आप तो मनुष्य होंगे (हैं न)?”

“ब्राह्मण! मैं मनुष्य नहीं होऊंगा (बनूंगा)।”

“‘आप तो देवता होंगे?’ पूछने पर आप कहते हैं ‘हे ब्राह्मण! मैं देवता नहीं होऊंगा’; ‘आप तो गंधर्व होंगे’, पूछने पर आप कहते हैं, ‘ब्राह्मण! मैं गंधर्व नहीं होऊंगा’; ‘आप तो यक्ष होंगे’, पूछने पर आप कहते हैं, ‘ब्राह्मण! मैं यक्ष नहीं होऊंगा’, ‘आप तो मनुष्य होंगे’, पूछने पर आप कहते हैं, ‘ब्राह्मण! मैं मनुष्य नहीं होऊंगा’ तो आप कौन हैं?”

(यहां पर द्रोण ब्राह्मण भगवान की वर्तमान अवस्था के बारे में पूछ रहा है और भगवान उसी प्रश्न के उत्तर में यह बता रहे हैंकि वे भविष्य में कुछ भी नहीं बनेंगे, उनका दोबारा जन्म नहीं होगा।)

“हे ब्राह्मण!जिन आस्रवों के प्रहीण न होने से मैं (अगले जन्म में) देवता बन सकू, मेरे वे आस्रव ‘प्रहीण’ हो गये हैं, जड़ से उखड़ गए हैं, कटे ताड़ की तरह हो गए हैं, अभाव-प्राप्त हो गए हैं, (उनके) भावी उत्पत्ति की संभावना नहीं रही है। हे ब्राह्मण!जिन आस्रवों के प्रहीण न होने से मैं (अगले जन्म में) गंधर्व बन सकू … यक्ष बन सकू … मनुष्य बन सकू, मेरे वे आस्रव ‘प्रहीण’ हो गये है, जड़ से उखड़ गए हैं, कटे ताड़ की तरह हो गए हैं, अभाव-प्राप्त हो गए हैं, (उनके) भावी-उत्पत्ति की संभावना नहीं रही है। ब्राह्मण, जैसे उत्पल हो, पद्म हो या पुंडरीक हो, वह पानी में पैदा हो, पानी में संवर्धित हो किंतु वह पानी से अलिप्त रहकर उससे ऊपर रहे। इसी प्रकार ब्राह्मण! मैं लोक में पैदा हुआ हूं, लोक में संवर्धित हुआ हूं, किंतु लोक को जीतकर (ऊपर उठकर) उससे अलिप्त रहकरविहार करता हूं। ब्राह्मण! मुझे ‘बुद्ध’ समझ।

“येन देवूपपत्यस्स, गन्धब्बो वाविहङ्गमो।

यक्खत्तं येन गच्छेय्यं, मनुस्सत्तञ्‍च अब्बजे।

ते मय्हं, आसवा खीणा,विद्धस्ताविनळीकता॥

“पुण्डरीकं यथा वग्गु, तोयेन नुपलिप्पति।

नुपलिप्पामि लोकेन, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मणा”ति॥

(जिन आस्रवों के कारण मैं देव लोक में जन्ममिले, या हवा में उडने वाला गंधर्व (बनू),जिसके कारण मैं यक्षत्व प्राप्त करू अथवा मनुष्यत्व; मेरे वे सब ‘आस्रव’ क्षीण,विध्वस्त हो गये, नष्ट हो गये हैं। जैसे सुंदर कमल जल सेलिप्त नहीं होता, उसी तरह मैं भी लोक सेलिप्त नहीं होता। इसीलिए हे ब्राह्मण! मैं बुद्ध हूं।)

७. अ-पतन सुत्त

३७. “भिक्षुओ, चार धर्मों से युक्तभिक्षु पतन केलिए असंभावित हो जाता है, उसेनिर्वाण के समीप ही समझना चाहिए। कौन-से चार?भिक्षुओ,भिक्षु, शील-संपन्‍न होता है, इंद्रियों को वश मेंकिए होता है, भोजन की मात्रा जानने वाला होता है, सजगता से अनुयुक्त होता है।

“भिक्षुओ,भिक्षु शील-संपन्‍न कैसे होता है?भिक्षुओ,भिक्षु शील-संपन्‍न होता है, प्रातिमोक्ष केनियमों के अनुसार चलने वाला, आचार-गोचरयुक्त, अणु-मात्र दोष करने में भी भय देखने वाला,शिक्षापदों का सम्यक प्रकार से ग्रहण कर अभ्यास करने वाला।भिक्षुओ, इस प्रकारभिक्षु शील-संपन्‍न होता है।

भिक्षुओ,भिक्षु इंद्रियों को कैसे वश मेंकिए रहता है?भिक्षुओ,भिक्षु चक्षु से रूप को देखकर न उसकेनिमित्त को ग्रहण करता है, न उसके अनुव्यंजन को ग्रहण करता है,जिस चक्षु-इंद्रिय के असंयतविहार से लोभ, द्वेष रूपी पापी अकुशल-धर्म उत्पन्‍न हो सकते हैं, उसको संयत रखने केलिये प्रयत्नशील होता है, चक्षु-इंद्रिय की रक्षा करता है, चक्षु-इंद्रिय का संवर करता है, श्रोत से शब्द सुनकर..... घ्राण से गंध सूंघकर.....जिव्हा से रस चखकर..... कायासे स्पृश्य को स्पर्श करके … मन सेविचारों (मन केविषयों) को जानकर न उसकेनिमित्त को ग्रहण करता है, न उसके अनुव्यंजन को ग्रहण करता है,जिस मन-इंद्रिय के असंयतविहार से लोभ, द्वेष रूपी पापी अकुशल धर्म उत्पन्‍न हो सकते हैं, उस मन-इंद्रिय को संयत रखने केलिये प्रयत्नशील होता है, वह मन-इंद्रियकी रक्षा करता है, मन-इंद्रिय का संवर करता है।भिक्षुओ, इस प्रकारभिक्षु इंद्रियों को वश मेंकिए रहता है।

“भिक्षुओ,भिक्षु भोजन की मात्रा जानने वाला कैसे होता है?भिक्षुओ,भिक्षु सही रूप से सोच-विचार कर आहार ग्रहण करता है, न मौज-मजे केलिए, न मद केलिए, न मंडन केलिए, न अपने आपको सजाने केलिए, जब तक इस शरीर कीस्थिति है तब तक शरीर-यापन केलिए,विहिंसा सेविरति केलिए, ब्रह्मचर्य (श्रेष्‍ठ जीवन) के अनुकूल बनाने केलिए, (यह सोच करकि) पुरानी वेदनाओं का शमन करूंगा, नई वेदना उत्पन्‍न होने न दूंगा, मेरी जीवन-यात्रानिर्दोष होगी तथा जीवन सुविधापूर्वक बीतेगा।भिक्षुओ, इस प्रकारभिक्षु भोजन की मात्रा जानने वाला होता है।

“भिक्षुओ,भिक्षु सजगता से अनुयुक्त कैसे होता है?भिक्षुओ,भिक्षुदिन में चंक्रमण करते हुए या बैठकरचित्त के आवरण-मलों सेचित्त को शुद्ध करता है; रात्रि के प्रथम याम में चंक्रमण करते हुए या बैठकरचित्त के आवरण-मलों सेचित्त को शुद्ध करता है; रात्रि के मध्यम-याम में स्मृतिमान संप्रज्ञानी हो, उठने के संकल्प को मन में लेकर पांव पर पांव रखकर दाईं करवट सिंह शैय्या से लेटता है; रात्रि के अंतिम-याम में उठकर चंक्रमण करते हुए या बैठकरचित्त के आवरण-मलों सेचित्त को शुद्ध करता है।भिक्षुओ, इस प्रकारभिक्षु सजगता से अनुयुक्तहोता है।“भिक्षुओ, इन चार धर्मों से युक्तभिक्षु पतन के अयोग्य होता है, उसेनिर्वाण के समीप ही समझना चाहिये।

“सीले पतिट्ठितोभिक्खु, इन्द्रियेसु च संवुतो ।

भोजनम्हि च मत्तञ्‍ञू, जागरियं अनुयुञ्‍जति ||

“एवंविहारी आतापी, अहोरत्तमतन्दितो |

भावयं कुसलं धम्मं, योगक्खेमस्स पत्तिया ||

“अप्पमादरतोभिक्खु, पमादे भयदस्सि वा |

अभब्बो परिहानाय,निब्बानस्सेव सन्तिके”ति ||

[जोभिक्षु शील में प्रतिष्‍ठित होता है,जिसकी इंद्रियां संयत होती हैं, जो भोजन केविषय में मात्रज्ञ होता है तथा सजगता का अभ्यास करता है, वह इस प्रकार खूब प्रयत्न सेविहार करता हुआ रात-दिन आलस्य-रहित होता है, योग-क्षेम की प्राप्ति केलिये कुशल धर्म की भावना करता है। (इस प्रकार) प्रमाद में भय मानने वाला अप्रमादीभिक्षु पतन के अयोग्य होता है, वहनिर्वाण के समीप ही होता है।]

८. प्रतिलीन सुत्त

३८. “भिक्षुओ, जोभिक्षु सबमिथ्या-धारणाओं को त्याग देता है, वह सब एषणाओं का त्यागी होता है, उसके काय-संस्कार शांत होते हैं, वह प्रतिलीन (समाधि-प्राप्त) कहलाता है।भिक्षुओ,भिक्षु सबमिथ्या धारणाओं का त्यागी कैसे होता है?भिक्षुओ, अनेक श्रमण-ब्राह्मणों की जो अनेक प्रकार कीमिथ्या धारणाएं हैं, जैसे यह लोक शाश्वत है या यह लोक अशाश्वत है; यह लोक सान्त (अंत-वाला) है या यह लोक अनंत है; जो शरीर है वही जीव है या शरीर अन्य है, जीव अन्य है; तथागत मरणानंतर रहते हैं या तथागत मरणानंतर नहीं रहते, तथागत मरणांतर रहते हैं और नहीं भी रहते हैं; तथागत मरणांतर न रहते हैं और न नहीं रहते हैं– उसकी ये सब धारणाएं नष्ट हो गई रहती हैं, त्यक्त होती हैं,निकल गई रहती हैं, परित्यक्त होती हैं, प्रहीण हो गई रहती हैं,विनाश को प्राप्त हो गई रहती हैं;भिक्षुओ, इस प्रकारभिक्षुमिथ्या-धारणाओं का त्यागी होता है।

“भिक्षुओ,भिक्षु सब एषणाओं का त्यागी कैसे होता है?भिक्षुओ, यहांभिक्षु की कामेषणा प्रहीण होती है, भवेषणा प्रहीण होती है, ब्रह्मचर्येषणा शांत होती है; इस प्रकारभिक्षुओ,भिक्षु सभी एषणाओं का त्यागी होता है।

“भिक्षुओ,भिक्षु के काय-संस्कार कैसे शांत होते हैं?भिक्षुओ, यहांभिक्षु के सुख और दुःख का प्रहाण कर, पूर्वस्थित सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्तगमन होने से, अदुःख-असुख रूप उपेक्षा-स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान को प्राप्त करविहार करता है।भिक्षुओ, इस प्रकारभिक्षु का काय-संस्कार शांत होता है।

“भिक्षुओ,भिक्षु प्रतिलीन (समाधि-प्राप्त) कैसे होता है?भिक्षुओ, यहांभिक्षु का अहंकार प्रहीण होता है, जड़ से उखाड़ा जाता है, कटे ताड़-सा हो जाता है, अभाव-प्राप्त हो जाता है, (उस अहंकार के) भविष्य में पुनरुत्पत्ति की संभावना नहीं रहती।भिक्षुओ, इस प्रकारभिक्षु प्रतिलीन होता है।भिक्षुओ,जिसभिक्षु ने सबमिथ्या-धारणाओं को त्यागदिया रहता है, वह सब एषणाओं का त्यागी, शांत-काय-संस्कार तथा प्रतिलीन कहलाता है।”

“कामेसना भवेसना, ब्रह्मचरियेसना सह |

इति सच्‍चपरामासो,दिट्ठिट्ठाना समुस्सया ||

“सब्बरागविरत्तस्स, तण्हक्खयविमुत्तिनो |

एसना पटिनिस्सट्ठा,दिट्ठिट्ठाना समूहता ||

“स वे सन्तो सतोभिक्खु, पस्सद्घो अपराजितो |

मानाभिसमया बुद्घो, पतिलीनोति वुच्‍चती”ति ||

[कामेषणा, भवेषणा और ब्रह्मचर्येषणा– ये जो (मिथ्या-) सत्यों के संपर्क (परामर्श) हैं; इन (मिथ्या) दृष्टि-स्थानों का नाश होने सेजिसके सब राग का क्षय हो गया,जिसकी तृष्णा का क्षय हो गया, उसकी एषणा शांत हो गई तथा उसके (मिथ्या) दृष्टि-स्थान जड़से उखड गए, उसने अपने मान का भेद (विनाश)किया है; वही शांत, स्मृतिमान (सजग), प्रश्रब्ध, अपराजित, (प्र-)बुद्धभिक्षु प्रतिलीन कहलाता है।]

९. उज्‍जय सुत्त

३९. उस समय उज्‍जय नामक ब्राह्मण भगवान के पास गया। पास पहुंचकर कुशल-क्षेम पूछा। कुशल-क्षेम की बातचीत कर चुकने पर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस उज्‍जय ब्राह्मण ने भगवान से यह कहा–

“हे गौतम! आप भी यज्ञ की प्रशंसा करते हैं?”

“हे ब्राह्मण! न मैं सभी यज्ञों की प्रशंसा करता हूं और न मैं सभी यज्ञों की निंदा करता हूं। ब्राह्मण!जिन यज्ञों में गौओं की हत्या होती है, बकरी-भेड़ों की हत्या होती है, मुर्गे-सूअरों की हत्या होती है तथा (अन्य) नाना प्रकार के प्राणियों की हत्या होती है, हे ब्राह्मण! मैं इस प्रकार के हिंसक यज्ञ की प्रशंसा नहीं करता। यहकिसलिए? ब्राह्मण! इस प्रकार के यज्ञ में न अर्हत ही आते हैं और न अर्हत मार्गारूढ़ ही।

“हे ब्राह्मण!जिस यज्ञ में न गाैंओं की हत्या होती है, न बकरी-भेड़ों की हत्या होती है, न मुर्गे-सूअरों की हत्या होती है और न (अन्य) नाना प्रकार के प्राणियों की हत्या होती है, हे ब्राह्मण! मैं इस प्रकार के अहिंसक यज्ञ की प्रशंसा करता हूं जोकि यहनित्य दान देना है, यह अनुकूल यज्ञ है। यहकिसलिए? हे ब्राह्मण! इस प्रकार के अहिंसक यज्ञ में अर्हत वा अर्हत-मार्गारूढ़ आते हैं।

“अस्समेधं पुरिसमेधं, सम्मापासं वाजपेय्यंनिरग्गळं |

महायञ्‍ञा महारम्भा, न ते होन्ति महप्फला ||

“अजेळका च गावो च,विविधा यत्थ हञ्‍ञरे |

न तं सम्मग्गता यञ्‍ञं, उपयन्ति महेसिनो ||

“ये व यञ्‍ञानिरारम्भा, यजन्ति अनुकुलं सदा |

अजेळका च गावो च,विविधा नेत्थ हञ्‍ञरे |

तञ्‍च सम्मग्गता यञ्‍ञं, उपयन्ति महेसिनो ||

“एतं यजेथ मेधावी, एसो यञ्‍ञो महप्फलो |

एतञ्हि यजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो |

यञ्‍ञो चविपुलो होति, पसीदन्ति च देवता”ति ||

(अश्वमेध, नरमेध, शाम्यप्राश, वाजपेय्य तथानिरर्गल– ये महारंभ वाले (खूब हिंसा वाले) महायज्ञ महाफलदायी नहीं होते। जहां बकरी-भेड़ों की, गौओं की तथा अन्य प्राणियों की हत्या होती है, वहां सम्यक मार्गारूढ़ महर्षि नहीं जाते हैं।जिस अनुकूल अहिंसक यज्ञ का सदा यजनकिया जाता है, जहां बकरी-भेडों, गौओं तथा अन्य नाना प्रकार के प्राणियों की हत्या नहीं होती, वहां सम्यक मार्गारूढ़ महर्षि जाते हैं। मेधावी-जन को चाहिएकि इस प्रकार का यज्ञ करंे, क्योंकि इसी प्रकार का यज्ञ महान फलदायी होता है। इस प्रकार का यज्ञ करने वाले का भला ही होता है, बुरा नहीं होता। यज्ञ भी बड़ा होता है तथा देवता प्रसन्‍न होते हैं।)

१०. उदायी सुत्त

४०. उस समय उदायी ब्राह्मण भगवान के पास गया। पास पहुंच कर कुशल-क्षेम पूछा। कुशल-क्षेम की बात-चीत कर चुकने पर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस उदायी ब्राह्मण ने भगवान से यह कहा–

“हे गौतम! आप भी यज्ञ की प्रशंसा करते हैं?”

“ब्राह्मण! मैं सभी यज्ञों की न प्रशंसा करता हूं और न सभी यज्ञों की निंदा करता हूं। ब्राह्मण!जिन यज्ञों में गौओं की हत्या होती है, बकरी-भेड़ों की हत्या होती है, मुर्गे-सूअरों की हत्या होती है तथा (अन्य) नाना प्रकार के प्राणियों की हत्या होती है, हे ब्राह्मण! मैं इस प्रकार के हिंसक यज्ञ की प्रशंसा नहीं करता। यहकिसलिए? ब्राह्मण! इस प्रकार के यज्ञ में न अर्हत ही आते हैं और न अर्हत मार्गारूढ़ ही।

“हे ब्राह्मण!जिस यज्ञ में न गाैंओं की हत्या होती है, न बकरी-भेड़ों की हत्या होती है, न मुर्गे-सूअरों की हत्या होती है और न (अन्य) नाना प्रकार के प्राणियों की हत्या होती है, हे ब्राह्मण! मैं इस प्रकार के अहिंसक यज्ञ की प्रशंसा करता हूं जोकि यहनित्य दान देना है, यह अनुकूल यज्ञ है। यहकिसलिए? हे ब्राह्मण! इस प्रकार के अहिंसक यज्ञ में अर्हत वा अर्हत-मार्गारूढ़ आते हैं।

“अभिसङ्खतंनिरारम्भं, यञ्‍ञं कालेन कप्पियं |

तादिसं उपसंयन्ति, सञ्‍ञता ब्रह्मचारयो ||

“विवटच्छदा ये लोके, वीतिवत्ता कुलं गतिं |

यञ्‍ञमेतं पसंसन्ति, बुद्धा यञ्‍ञस्स कोविदा ||

“यञ्‍ञे वा यदि वा सद्धे, हब्यं कत्वा यथारहं |

पसन्‍नचित्तो यजति, सुखेत्ते ब्रह्मचारिसु ||

“सुहुतं सुयिट्ठं सुप्पत्तं, दक्खिणेय्येसु यं कतं |

यञ्‍ञो चविपुलो होति, पसीदन्ति च देवता ||

“एवं यजित्वा मेधावी, सद्धो मुत्तेन चेतसा |

अब्याबज्झं सुखं लोकं, पण्डितो उपपज्‍जती”ति ||

(जिस यज्ञ में पशुओं की हत्या न होती हो, ऐसा अभिसंस्कृत (तैयारकिया हुआ) यज्ञ उचित समय पर करना चाहिए। जो संयत हैं, जो ब्रह्मचारी हैं वे वैसे ‘यज्ञ’ में जाते हैं।जिनके (अंधकार के)पट खुले हैं, जो कुल-गति की सीमाओं के उस पार हैं, जो यज्ञ के जानकार ‘बुद्ध’ है वे ऐसे ही यज्ञ की प्रशंसा करते हैं। यज्ञ में अथवा श्राद्ध में (उचित) हव्य तैयार कर, (यजमान) सुक्षेत्र ब्रह्मचारियों मे प्रसन्‍नचित्त हो यजन करता है (दान देता है)। दक्षिणा देने योग्यों को जो दानदिया जाता है, वह अच्छी आहुति देना है, वह अच्छा अर्पण करना है, वह अच्छी प्राप्ति (सुफलदायी) है और ऐसा ‘यज्ञ’ महान यज्ञ होता है। देवतागण भी (उसमें) प्रसन्‍न होते हैं। जो मेधावी, पंडित होता है, जो श्रद्धावान होता है, वह मुक्तचित्त से इस प्रकार यज्ञ करके व्यापाद-रहित सुख-लोक को प्राप्त होता है।)

५. रोहितस्स वर्ग

१. समाधि-भावना सुत्त

४१. “भिक्षुओ, समाधि-भावना चार प्रकार की होती है। कौन सी चार?भिक्षुओ, एक समाधि-भावना ऐसी होती हैजिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से इसी जीवन में सुख की अनुभूति होती है।भिक्षुओ, एक समाधि-भावना ऐसी होती है,जिसकी भावना करने सेजिसका अभ्यास बढ़ाने से, ज्ञान-दर्शन का लाभ होता है।भिक्षुओ, एक समाधि-भावना ऐसी होती हैजिसकी भावना करने सेजिसका अभ्यास बढ़ाने से स्मृति-संप्रज्ञान की प्राप्ति होती है।भिक्षुओ, एक समाधि-भावना ऐसी होती है,जिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से आस्रवों का क्षय होता है।

“भिक्षुओ, वह समाधि-भावना कौन-सी हैजिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से इसी जीवन में सुख की प्राप्ति होती है?भिक्षुओ, यहां एकभिक्षु कामभोगों से पृथक हो ... प्रीति से भी वैराग्ययुक्त हो, उपेक्षावान बनविहार करता है, स्मृतिमान हो, संप्रज्ञानी हो, काया से सुखद संवेदनाओं का अनुभव करता है,जिसके बारे में आर्य-जन कहते हैं- ‘उपेक्षावान है, स्मृतिमान है, सुखपूर्वकविहार करनेवाला है’, ऐसा तृतीय-ध्यान प्राप्त करविहार करता है; सुख और दुःख दोनों का प्रहाण कर पूर्वस्थित सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्तगमन होने से, अदुःख-असुखरूप उपेक्षा-स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान प्राप्त करविहार करता है।भिक्षुओ, यह है वह समाधि-भावनाजिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से इसी जीवन में सुख की प्राप्ति होती है।

“भिक्षुओ, वह समाधि-भावना कौन-सी हैजिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से ज्ञान-दर्शन का लाभ होता है?भिक्षुओ, यहां एकभिक्षु आलोक-संज्ञा को मन में धारण करता है,दिवस-संज्ञा को मन में धारण करता है, उसकेलिए जैसादिन वैसी रात होती है, जैसी रात वैसादिन होता है। वह खुलेचित्त से, बाधा-रहितचित्त से प्रभायुक्तचित्त की भावना करता है।भिक्षुओ, यह है वह समाधि-भावनाजिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से ज्ञान-दर्शन का लाभ होता है।

“भिक्षुओ, वह समाधि-भावना कौन-सी हैजिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से स्मृति-संप्रज्ञान की प्राप्ति होती है?भिक्षुओ, यहां एकभिक्षु की जानकारी में (भिक्षु के जानते हुए) वेदनाओं की उत्पत्ति होती है, वेदनाओं कीस्थिति रहती है, तथा वेदनाएं अंतर्धान होती हैं; जानकारी में संज्ञाओं तथावितर्कों की उत्पत्ति होती है,स्थिति होती है तथा जानकारी में ही ये अंतर्धान होते हैं।भिक्षुओ, यह है वह समाधि-भावनाजिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से स्मृति-संप्रज्ञान की प्राप्ति होती है।

“भिक्षुओ, वह समाधि-भावना कौन-सी हैं,जिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से आस्रवों का क्षय होता है?भिक्षुओ, यहां एकभिक्षु, पांच उपादान स्कंधों की उत्पत्ति तथा व्यय का अनुभव करते हुएविहरता है- यह ‘रूप’ है, यह ‘रूप’ की उत्पत्ति है, यह ‘रूप’ काविनाश है; यह ‘वेदना’ है, यह ‘वेदना’ की उत्पत्ति है, यह ‘वेदना’ काविनाश है; यह ‘संज्ञा’ है, यह ‘संज्ञा’ की उत्पत्ति है, यह संज्ञा काविनाश है; ये ‘संस्कार’ हैं, यह ‘संस्कारों’ की उत्पत्ति है, यह ‘संस्कारों’ काविनाश है; तथा यह ‘विज्ञान’ है, यह ‘विज्ञान’ की उत्पत्ति है, यह ‘विज्ञान’ काविनाश है।भिक्षुओ, यह है वह समाधि-भावनाजिसकी भावना करने से,जिसका अभ्यास बढ़ाने से आस्रवों का क्षय होता है।भिक्षुओ, ये चार समाधि-भावनाएं हैं।भिक्षुओ, मैंने इसी संबंध में ‘पारायण’ वर्ग के ‘पूर्णक प्रश्न (पुण्णकमाणवपुच्छा)’ में कहा है।

“सङ्खाय लोकस्मिं परोपरानि,

यस्सिञ्‍जितं नत्थि कुहिञ्‍चि लोके |

सन्तोविधूमो अनीघोनिरासो,

अतारि सो जातिजरन्ति ब्रूमी”ति ||

(लोक में ऊंच तथा नीच को जान लेने के बाद संसार मेंजिसका मनकिसी भीविषय में चंचल नहीं है, मैं कहता हूंकि वह शांत है, वह राग-रहित है, वह दुःख-रहित है, वह आशारहित (तृष्णारहित) है तथा उसने जन्म-जरा के सागर को पार करलिया है।)

२. प्रश्न-व्याकरण सुत्त

४२. “भिक्षुओ, प्रश्नों कोनिपटाने के ये चार ढंग (व्याकरण) हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, ऐसा भी प्रश्न होता हैजिसका एकांश (‘हां’ या ‘नहीं’ में) उत्तरदिया जाना चाहिए;भिक्षुओ, ऐसा भी प्रश्न होता हेजिसकाविभाजन करके उत्तरदिया जाना चाहिए;भिक्षुओ, ऐसा भी प्रश्न होता हैकिजिसका प्रति-प्रश्न पूछकर उत्तरदिया जाना चाहिए;भिक्षुओ, ऐसा भी प्रश्न होता हैकिजिसका उत्तर नहीं देना चाहिए।भिक्षुओ, प्रश्नों कोनिपटाने के ये चार ढंग हैं।

“एकंसवचनं एकं,विभज्‍जवचनापरं |

ततियं पटिपुच्छेय्य, चतुत्थं पन ठापये ||

“यो च तेसं तत्थ तत्थ, जानाति अनुधम्मतं |

चतुपञ्हस्स कुसलो, आहुभिक्खुं तथाविधं ||

“दुरासदो दुप्पसहो, गम्भीरो दुप्पधंसियो |

अथो अत्थे अनत्थे च, उभयस्स होति कोविदो ||

“अनत्थं परिवज्‍जेति, अत्थं गण्हाति पण्डितो |

अत्थाभिसमया धीरो, पण्डितोति पवुच्‍चती”ति ||

(कोई वचन एकांश उत्तर देने योग्य होता है, कोई दूसराविभाजन करके उत्तर देने योग्य होता है, कोई तीसरा प्रति-प्रश्न पूछने योग्य होता है तथा कोई चौथाबिना उत्तरदिये ही रख देने योग्य (ठपनीय) होता है। जोभिक्षु उन प्रश्नों को, उस उस प्रकार से जानता है, वैसेभिक्षु को चारों (प्रकार के) प्रश्नों को उत्तर देने में कुशलभिक्षु कहते हैं। वह दुर्जेय होता है, कठिनाई से जीता जा सकता है, गंभीर होता है, (उस पर) कठिनाई से आक्रमणकिया जा सकता है, वह अर्थ तथा अनर्थ दोनोंविषयों में पंडित होता है। जो बुद्धिमान आदमी अनर्थ को छोड़कर, अर्थ को ग्रहण करता है, वह अर्थ का जानकार धीर पुरुष पंडित कहलाता है।)

३. क्रोध-प्रधान सुत्त (प्रथम)

४३. “भिक्षुओ, संसार में ये चार प्रकार के व्यक्तिविद्यमान हैं। कौन-से चार? जो क्रोध-प्रधान होता है, सद्धर्म-प्रधान नहीं होता है; म्रक्ष (ढोंग)-प्रधान होता है, सद्धर्म-प्रधान नहीं होता है; लाभ-प्रधान होता है, सद्धर्म-प्रधान नहीं होता है; सत्कार--प्रधान होता है, सद्धर्म-प्रधान नहीं होता है |भिक्षुओ, संसार में ये चार प्रकार के व्यक्तिविद्यमान हैं।

“भिक्षुओ, संसार में ये चार प्रकार के व्यक्तिविद्यमान हैं। कौन-से चार? जो सद्धर्म-प्रधान होता है, क्रोध-प्रधान नहीं होता है; सद्धर्म-प्रधान होता है, म्रक्ष (ढोंग)-प्रधान नहीं होता है; सद्धर्म-प्रधान होता है, लाभ--प्रधान नहीं होता है; सद्धर्म-प्रधान होता है, सत्कार--प्रधान नहीं होता है |भिक्षुओ, संसार में ये चार प्रकार के व्यक्तिविद्यमान हैं।

“कोधमक्खगरूभिक्खू, लाभसक्‍कारगारवा |

न ते धम्मेविरूहन्ति, सम्मासम्बुद्धदेसिते ||

“ये च सद्धम्मगरुनो,विहंसुविहरन्ति च |

ते वे धम्मेविरूहन्ति, सम्मासम्बुद्धदेसिते”ति ||

(जोभिक्षु क्रोध-प्रधान, म्रक्ष-प्रधान, लाभ-प्रधान तथा सत्कार-प्रधान होते हैं, वे सम्यक संबुद्ध द्वारा उपदेशकिए गये धर्म में वृद्धि को प्राप्त नहीं होते। जो सद्धर्म-प्रधान थेे और (सद्धर्म—प्रधान) हैं, वे ही सम्यक संबुद्ध द्वारा उपदेशकिए गये धर्म में वृद्धि को प्राप्त होते हैं।)

४. क्रोध-प्रधान सुत्त (द्वितीय)

४४. “भिक्षुओ, ये चार अ-सद्धर्म हैं। कौन-से चार? क्रोध को महत्व देना (क्रोध-प्रधानता), सद्धर्म को महत्व न देना; म्रक्ष को महत्व देना, सद्धर्म को महत्व न देना; लाभ को महत्व देना, सद्धर्म को महत्व न देना; तथा सत्कार को महत्व देना, सद्धर्म को महत्व न देना।

“भिक्षुओ, ये चार सद्धर्म हैं। कौन-से चार? सद्धर्म को महत्व देना (सद्धर्म-प्रधानता), क्रोध को महत्व न देना; सद्धर्म को महत्व देना, म्रक्ष को महत्व न देना, सद्धर्म को महत्व देना, लाभ को महत्व न देना तथा सद्धर्म को महत्व देना, सत्कार को महत्व न देना।भिक्षुओ, ये चार सद्धर्म हैं।

“कोधमक्खगरुभिक्खु, लाभसक्‍कारगारवो |

सुखेत्ते पूतिबीजंव, सद्धम्मे नविरूहति ||

“ये च सद्धम्मगरुनो,विहंसुविहरन्ति च |

ते वे धम्मेविरूहन्ति, स्नेहान्वयमिवोसधा”ति ||

(जोभिक्षु क्रोध, ढोंग, लाभ तथा सत्कार-प्रधान हो, वह उसी प्रकार सद्धर्म वृद्धि को नहीं प्राप्त होता जेसे अच्छे खेत में डाला हुआ सड़ा हुआ बीज। जो सद्धर्म-प्रधान रहते थे तथा रहते हैं उनकी सद्धर्म में उसी प्रकार वृद्धि होती है जैसे नमीमिलने से औषधि वनस्पति की।)

५. रोहितस्स सुत्त

४५. एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम मेंविहार कर रहे थे। तब रोहितस्स नाम का प्रकाशमान देवपुत्र बहुत रात बीतने पर सारे के सारे जेतवन को प्रकाशित करता हुआ भगवान के पास पहुंचा। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खडे हुए रोहितस्स देवपुत्र ने भगवान से यह कहा–

“भन्ते! जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, तो भन्ते! क्या गमन से (चल कर, यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना जा सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है? “आयुष्मान! जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, मैं यह नहीं कहताकि गमन से (यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है।”

“भन्ते! यह आश्चर्य है। भन्ते! यह अद्भुत है। भन्ते! आपका यह कहना सुभाषित हैकि आयुष्मान! जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, मैं यह नहीं कहताकि गमन से (यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है।”

“भन्ते! भन्ते! मैं पहले रोहितस्स नाम का ऋषि था, भोजपुत्र, ऋद्धिमान, आकाशगामी। भन्ते! उस समय मेरी इतनी तेज चाल थी, जैसे कोई शक्तिशाली, अभ्यस्त, सधे हाथ वाला, होशियार धनुर्धारी एक हलके से तीर से, आसानी से, ताड़ की छाया को सीधे लांघ जाये (उसी प्रकार उतनी देर में मैं चक्रवाल का चक्‍कर काट कर लौट आता था- अट्ठकथा०)। भन्ते! मेरा कदम (लांघ, फलांग??) इतना बड़ा थाकि जैसे पूर्व के समुद्र से पश्चिम के समुद्र के बीच की दूरी। “भन्ते! उस समय इस प्रकार की चाल और इस प्रकार की लांघ से युक्त मेरे मन में यह इच्छा उत्पन्‍न हुईकि मैं गमन से लोक (विश्व) के अंत तक पहुंचूंगा। भन्ते! मैंबिना खाये-पिये,बिना मलमूत्र त्यागकिए,बिना सोये याविश्रामकिए सौ वर्ष की आयुवाला मैं, सौ वर्ष तक जीता रह कर, सौ वर्ष तक यात्रा करते रह कर, लोक के अंत तकबिना पहुंचे, रास्ते में ही मर गया।

भन्ते! यह आश्चर्य है। भन्ते! यह अद्भुत है। भन्ते! आपका यह कहना सुभाषित हैकि आयुष्मान। जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, मैं यह नहीं कहताकि गमन से (यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है।”

“आयुष्मान! जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, मैं यह नहीं कहताकि गमन से (यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है। और आयुष्मान! मैं यह भी नहीं कहताकिबिना लोक के अंत तक पहुंचे, दुःख का नाश हो सकता है।किंतु आयुष्मान! इसी व्याम-भर के लंबे संज्ञा-युक्त औरचित्त-युक्त शरीर में ही मैं लोक की, लोक-समुदय की, लोक-निरोध की तथा लोक-निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग की प्रज्ञप्ति करता हूं।”

“गमनेन न पत्तब्बो, लोकस्सन्तो कुदाचनं |

न च अप्पत्वा लोकन्तं, दुक्खा अत्थि पमोचनं ||

“तस्मा हवे लोकविदू सुमेधो,

लोकन्तगू वुसितब्रह्मचरियो |

लोकस्स अन्तं समितावि ञत्वा,

नासीसती लोकमिमं परञ्‍चा”ति ||

[चल कर लोक के अंत तक कभी नहीं पहुंचा जा सकता औरबिना लोक के अंत तक पहुंचे, दुःख से मुक्ति भी नहीं प्राप्त होती। इसलिए लोक को जानने वाला, श्रेष्‍ठ-जीवन व्यतीतकिया हुआ, लोक के अंत तक पहुंचा हुआ मेधावी, खुद को (अपनेविकारों को) शांत कर, लोक के अंत को जानकर इस लोक व परलोक में कहीं आसक्त नहीं होता।]

६. रोहितस्स सुत्त (द्वितिय)

४६. तब भगवान ने उस रात के बीतने परभिक्षुओं को संबोधितकिया– “भिक्षुओ! आज रात रोहितस्स नाम का प्रकाशमान देवपुत्र बहुत रात बीतने पर सारे के सारे जेतवन को प्रकाशित करता हुआ मेरे पास पहुंचा। पास आकर मुझे अभिवादन कर एक ओर खड़ा हुआ। ऐक ओर खड़े हुए रोहितस्स देवपुत्र ने मुझ से यह कहा– भन्ते! जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, तो भन्ते! क्या गमन से (चल कर, यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना जा सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है?भिक्षुओ, ऐसा कहने पर मैंने रोहितस्स देवपुत्र को ऐसा कहा– “आयुष्मान! जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, मैं यह नहीं कहताकि गमन से (यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है।” ऐसा कहने परभिक्षुओ, रोहितस्स देवपुत्र ने मुझे ऐसा कहा– भन्ते! आश्चर्य है। भन्ते! अद्भुत है। आप भगवान का जो यह सुभाषित हैकि “आयुष्मान! जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, मैं यह नहीं कहताकि गमन से (यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है।”

भन्ते! मैं पहले रोहितस्स नाम का ऋषि था, भोजपुत्र, ऋद्धिमान, आकाशगामी। भन्ते! उस समय मेरी इतनी तेज चाल थी, जैसे कोई शक्तिशाली, अभ्यस्त, सधे हाथ वाला, होशियार धनुर्धारी एक हलके से तीर से, आसानी से, ताड़ की छाया को सीधे लांघ जाये | भन्ते! मेरा कदम (लांघ, फलांग??) इतना बड़ा थाकि जैसे पूर्व के समुद्र से पश्चिम के समुद्र के बीच की दूरी। भन्ते! उस समय इस प्रकार की चाल और इस प्रकार की लांघ से युक्त मेरे मन में यह इच्छा उत्पन्‍न हुईकि मैं गमन से लोक (=विश्व) के अंत तक पहुंचूंगा। भन्ते! मैंबिना खाये-पिये,बिना मलमूत्र त्यागकिए,बिना सोये वाविश्रामकिए सौ वर्ष की आयुवाला मैं, सौ वर्ष तक जीता रह कर, सौ वर्ष तक यात्रा करते रह कर, लोक के अंत तकबिना पहुंचे, रास्ते में ही मर गया। भन्ते! आश्चर्य है। भन्ते! अद्भुत है। आप भगवान का जो यह सुभाषित हैकि आयुष्मान! जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, मैं यह नहीं कहताकि गमन से (यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है।”

“ऐसा कहने परभिक्षुओ, मैंने रोहितस्स देवपुत्र को यह कहाकि आयुष्मान! जहां न जन्म होता है, न जरा होती है, न मरना होता है, न च्युति होती है तथा न उत्पत्ति होती है, मैं यह नहीं कहताकि गमन से (यात्रा करके) लोक के उस अंत को जाना सकता है, उसे देखा जा सकता है अथवा उसे प्राप्तकिया जा सकता है। और आयुष्मान! मैं यह भी नहीं कहताकिबिना लोक के अंत तक पहुंचे, दुःख का नाश हो सकता है।किंतु आयुष्मान! इसी व्याम-भर के लंबे संज्ञा-युक्त औरचित्त-युक्त शरीर में ही मैं लोक की, लोक-समुदय की, लोक-निरोध की तथा लोक-निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग की प्रज्ञप्ति करता हूं।”

“गमनेन न पत्तब्बो, लोकस्सन्तो कुदाचनं |

न च अप्पत्वा लोकन्तं, दुक्खा अत्थि पमोचनं ||

“तस्मा हवे लोकविदू सुमेधो,

लोकन्तगू वुसितब्रह्मचरियो |

लोकस्स अन्तं समितावि ञत्वा,

नासीसती लोकमिमं परञ्‍चा”ति ||

[चल कर लोक के अंत तक कभी नहीं पहुंचा जा सकता औरबिना लोक के अंत तक पहुंचे, दुःख से मुक्ति भी नहीं प्राप्त होती। इसलिए लोक को जानने वाला, श्रेष्‍ठ-जीवन व्यतीतकिया हुआ, लोक के अंत तक पहुंचा हुआ मेधावी, खुद को (अपनेविकारों को) शांत कर, लोक के अंत को जानकर इस लोक व परलोक में कहीं आसक्त नहीं होता।]

७. सुविदूर सुत्त

४७. “भिक्षुओ, ये चार एक दूसरे से परस्पर अत्यंत दूर हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, एक तो आकाश और पृथ्वी एक दूसरे से परस्पर अत्यंत दूर हैं;भिक्षुओ, दूसरे समुद्र का एककिनारा दूसरेकिनारे से परस्पर अत्यंत दूर हैं;भिक्षुओ, तीसरे जहां से सूर्य (वैरोचन) उदय होता है और जहां अस्त होता है ये दोनों परस्पर एक दूसरे से अत्यंत दूर हैं;भिक्षुओ, चौथे सत्पुरुषों का धर्म और असत्पुरुषों का धर्म परस्पर एक दूसरे से अत्यंत दूर हैं।भिक्षुओ, ये चार एक दूसरे से परस्पर अत्यंत दूर हैं।”

“नभञ्‍च दूरे पथवी च दूरे,

पारं समुद्दस्स तदाहु दूरे |

यतो च वेरोचनो अब्भुदेति,

पभङ्करो यत्थ च अत्थमेति |

ततो हवे दूरतरं वदन्ति,

सतञ्‍च धम्मं असतञ्‍च धम्मं ||

“अब्यायिको होति सतं समागमो,

यावापितिट्ठेय्य तथेव होति |

खिप्पञ्हि वेति असतं समागमो,

तस्मा सतं धम्मो असब्भि आरका”ति ||

[आकाश भी दूर है, पृथ्वी भी दूर है तथा समुद्र का उस पार भी (इस पार से) बहुत दूर है। इसी प्रकार जहां सूर्य उदय होता है और जहां अस्त होता है– ये दोनों भी परस्पर बहुत दूर हैं। इन सब से अधिक एक दूसरे-से-दूर सत्पुरुषों के धर्म तथा असत्पुरुषों के धर्म को कहा गया है। सत्पुरुषों का संबंध स्थायी होता है, जब तक बना रहता है एकरस ही रहता है। असत्पुरुषों का संबंध शीघ्र हीबिगड़ जाता है। इसलिए सत्पुरुषों का धर्म असत्पुरुषों के धर्म से बहुत दूर है।]

८.विसाख सुत्त

४८. एक समय भगवान श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिण्डिक के आराम मेंविहार करते थे। उस समय पंचाली-पुत्र आयुष्मानविसाख उपस्थान-शाला मेंभिक्षुओं को धार्मिक कथा नागर, मृदु, स्पष्ट,निर्दोष, अर्थ का बोध कराने में समर्थ, गंभीर, ऊँचे भावों वाली वाणी सेशिक्षित कर रहे थे, प्रेरित कर रहे थे, उत्साहित कर रहे थे तथा हर्षित कर रहे थे। तब भगवान सायंकाल को एकांत ध्यान से उठ, जहां उपस्थान-शाला थी वहां पहुंचे। जाकरबिछे आसन पर बैठे। बैठकर भगवान नेभिक्षुओं को संबोधितकिया–

“भिक्षुओ, उपस्थान-शाला में कौनभिक्षुभिक्षुओं को धार्मिक कथा नागर, मृदु, स्पष्ट,निर्दोष, अर्थ का बोध कराने में समर्थ, गंभीर ऊँचे भावों वाली वाणी सेशिक्षित कर रहे थे, प्रेरित कर रहे थे, उत्साहित कर रहे थे तथा हर्षित कर रहे थे?” “भन्ते! आयुष्मानविशाख उपस्थान-शाला मेंभिक्षुओं को धार्मिक कथा नागर, मृदु, स्पष्ट,निर्दोष, अर्थ का बोध कराने में समर्थ, गंभीर ऊँचे भावों वाली वाणी सेशिक्षित कर रहे थे, प्रेरित कर रहे थे, उत्साहित कर रहे थे तथा हर्षित कर रहे थे।”

तब भगवान ने पंचाली-पुत्र आयुष्मानविसाख को यह कहा– “विसाख! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा!विसाख बहुत अच्छा, तुमभिक्षुओं को धार्मिक कथा नागर, मृदु, स्पष्ट,निर्दोष, अर्थ का बोध कराने में समर्थ, गंभीर, ऊँचे भावों वाली वाणी सेशिक्षित कर रहे थे, प्रेरित कर रहे थे, उत्साहित कर रहे थे तथा हर्षित कर रहे थे।

“नाभासमानं जानन्ति,मिस्सं बालेहि पण्डितं |

भासमानञ्‍च जानन्ति, देसेन्तं अमतं पदं ||

“भासये जोतये धम्मं, पग्गण्हे इसिनं धजं |

सुभासितधजा इसयो, धम्मोहि इसिनं धजो”ति ||

(जब तक आदमी बोलता नहीं, तब तक मूर्खों मेंमिले पंडित की पृथक (अलग) पहचान नहीं होती। जब कोई बोलता है, अमृत वाणी का उपदेश करता है, तभी ही वह पहचाना जाता है। अतः धर्म का भाषण करंे। धर्म को प्रकाशित करंे। ऋषियों की ध्वजा को धारण करंे। सुभाषित ही ऋषियों की ध्वजा है, धर्म ही ऋषियों की ध्वजा है।)

९.विपर्यास सुत्त

४९. “भिक्षुओ, ये चार संज्ञा-विपर्यास,चित्त-विपर्यास, दृष्टि-विपर्यास हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, अनित्य कोनित्य मानना संज्ञा-विपर्यास है,चित्त-विपर्यास है दृष्टि-विपर्यास है।भिक्षुओ, दुःख को सुख मानना संज्ञा-विपर्यास है,चित्त-विपर्यास है, दृष्टि-विपर्यास है।भिक्षुओ, अनात्म को आत्म मानना संज्ञा-विपर्यास, है,चित्त-विपर्यास है, दृष्टि-विपर्यास है।भिक्षुओ, अशुभ (असुंदर) को शुभ (सुंदर) मानना संज्ञा-विपर्यास है,चित्त-विपर्यास है, दृष्टिविपर्यास है।भिक्षुओ, ये चार संज्ञा-विपर्यास,चित्त-विपर्यास, दृष्टि-विपर्यास हैं।

“भिक्षुओ, ये चार न संज्ञा-विपर्यास हैं, नचित्त-विपर्यास हैं, न दृष्टि-विपर्यास हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, अनित्य को अनित्य मानना न संज्ञा-विपर्यास है, नचित्त-विपर्यास है, न दृष्टि-विपर्यास है।भिक्षुओ, दुःख को दुःख मानना न संज्ञा-विपर्यास है, नचित्त-विपर्यास है, न दृष्टि-विपर्यास है।भिक्षुओ, अनात्म को अनात्म मानना न संज्ञा-विपर्यास है, नचित्त-विपर्यास है, न दृष्टि-विपर्यास है।भिक्षुओ, अशुभ (असुंदर) को अशुभ मानना न संज्ञा-विपर्यास है, नचित्त-विपर्यास है, न दृष्टि-विपर्यास है।भिक्षुओ, ये चार न संज्ञा-विपर्यास हैं, नचित्तविपर्यास हैं और न दृष्टि-विपर्यास हैं।

“अनिच्‍चेनिच्‍चसञ्‍ञिनो, दुक्खे च सुखसञ्‍ञिनो |

अनत्तनि च अत्ताति, असुभे सुभसञ्‍ञिनो |

मिच्छादिट्ठिहता सत्ता,खित्तचित्ताविसञ्‍ञिनो ||

“ते योगयुत्ता मारस्स, अयोगक्खेमिनो जना |

सत्ता गच्छन्ति संसारं, जातिमरणगामिनो ||

“यदा च बुद्धा लोकस्मिं, उप्पज्‍जन्ति पभङ्करा |

ते इमं धम्मं पकासेन्ति, दुक्खूपसमगामिनं ||

“तेसं सुत्वान सप्पञ्‍ञा, सचित्तं पच्‍चलद्धा ते |

अनिच्‍चं अनिच्‍चतो दक्खुं, दुक्खमद्दक्खु दुक्खतो ||

“अनत्तनि अनत्ताति, असुभं असुभतद्दसुं |

सम्मादिट्ठिसमादाना, सब्बं दुक्खं उपच्‍चगु”न्ति ||

(अनित्य कोनित्य मानने वाले, दुःख को सुख समझने वाले, अनात्म को आत्म समझने वाले, अशुभ (असुंदर) को शुभ समझने वाले, जोमिथ्या-दृष्टि वालेविक्षिप्त-चित्त संज्ञा-विहीन लोग होते हैं, वे मार के वशीभूत होते हैं औरनिर्वाण सेविमुख होते हैं। ऐसे प्राणी जन्म-मरण को प्राप्त हो, संसार में भटकते रहते हैं। लेकिन जब प्रभंकर बुद्ध लोक में उत्पन्‍न होते हैं और दुःख का उपशमन करने वाले इस धर्म को प्रकाशित करते हैं तो प्रज्ञावान उस धर्म को सुनकर अपनेचित्त (के वशीभाव) को प्राप्त होते हैं। वे अनित्य को अनित्य करके देखते हैं, दुःख को दुःख करके देखते हैं, अनात्म को अनात्म करके देखते हैं तथा अशुभ (असुंदर) को अशुभ करके देखते हैं। ऐसे सम्यक-दृष्टि प्राप्त लोग समस्त दुःख के पार चले जाते हैं।)

१०. मैल सुत्त

५०. “भिक्षुओ, ये चार चंद्रमा तथा सूर्य के मैल हैं,जिनसे मलिन होने के कारण चंद्रमा तथा सूर्य न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, बादल चंद्र तथा सूर्य का मैल है,जिससे मलिन होने के कारण चंद्र तथा सूर्य न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं।

भिक्षुओ, धुंध (कुहासा) चंद्र तथा सूर्य का मैल हैजिससे मलिन होने के कारण चंद्र तथा सूर्य न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं।

भिक्षुओ, धुआं और धूल चंद्र तथा सूर्य के मैल हैं,जिनसे मलिन होने के कारण चंद्र तथा सूर्य न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं, और न चमकते हैं।

भिक्षुओ असुरेंद्र राहु चंद्र तथा सूर्य का मैल है,जिससे मलिन होने के कारण चंद्र तथा सूर्य न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं।भिक्षुओ, ये चार चंद्र तथा सूर्य के मैल हैंजिनसे मलिन होने के कारण चंद्र तथा सूर्य न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं।

“इसी प्रकारभिक्षुओ, ये चार श्रमण-ब्राह्मणों के मैल हैंजिनसे मलिन होने के कारण कुछ श्रमण-ब्राह्मण न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं। कौन-से चार?भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मण सुरा-पान करते हैं, मेरय का सेवन करते हैं, सुरा-मेरय के पान सेविरत नहीं रहते हैं।भिक्षुओ, यह श्रमण-ब्राह्मणों का प्रथम मैल हैजिससे मलिन होने के कारण कुछ श्रमण-ब्राह्मण न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं।

भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मण मैथुन-धर्म का सेवन करते हैं, मैथुन-धर्म सेविरत नहीं होते हैं।भिक्षुओ, यह श्रमण-ब्राह्मणों का दूसरा मैल हैजिससे मलिन होने के कारण कुछ श्रमण-ब्राह्मण न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं।

भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मण चांदी-सोना स्वीकार करते हैं, चांदी-सोना ग्रहण करने सेविरत नहीं होते हैं।भिक्षुओ, यह श्रमण-ब्राह्मणों का तीसरा मैल है,जिससे मलिन होने के कारण कुछ श्रमण-ब्राह्मण न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं।

भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणमिथ्या-आजीविका से जीवन यापन करते हैं,मिथ्या-आजीविका सेविरत नहीं होते हैं।भिक्षुओ, यह श्रमण-ब्राह्मणों का चौथा मैल है,जिससे मलिन होने के कारण कुछ श्रमण-ब्राह्मण न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं और न चमकते हैं।भिक्षुओ, श्रमण-ब्राह्मणों के ये चार मैल हैं,जिनसे मलिन होने के कारण कुछ श्रमण-ब्राह्मण न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं, और न चमकते हैं।

“रागदोसपरिक्‍किट्ठा, एके समणब्राह्मणा |

अविज्‍जानिवुता पोसा,पियरूपाभिनन्दिनो ||

“सुरंपिवन्ति मेरयं, पटिसेवन्ति मेथुनं |

रजतं जातरूपञ्‍च, सादियन्ति अविद्दसू |

मिच्छाजीवेन जीवन्ति एके समणब्राह्मणा ||

“एते उपक्‍किलेसा वुत्ता, बुद्धेनादिच्‍चबन्धुना |

येहि उपक्‍किलेसेहि, एके समणब्राह्मणा |

न तपन्ति न भासन्ति, असुद्धा सरजा मगा ||

“अन्धकारेन ओनद्धा, तण्हादासा सनेत्तिका |

वड्ढेन्ति कटसिं घोरं, आदियन्ति पुनब्भव”न्ति ||

(कुछ श्रमण-ब्राह्मण राग-द्वेष से मलिन होने के कारण, अविद्या से अभिभूत (आवृत) हो, सुंदर, अनुकूल वस्तुओं का अभिनंदन करने वाले होते हैं; कुछ श्रमण-ब्राह्मण सुरा-मेरय का पान करते हैं, मैथुन-धर्म का सेवन करते हैं, वे मूर्ख लोग चांदी-सोना ग्रहण करते हैं तथामिथ्या-आजीविका से जीवन यापन करते हैं। आदित्य-बंधु बुद्ध ने ये मैल कहे हैं,जिनसे मलिन होने के कारण कुछ श्रमण-ब्राह्मण न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं; वे अपवित्र, धूमिल, पशुसमान होते हैं; वे अंधकार सेघिरे होते हैं, तृष्णा के दास होते हैं तथा भवनेत्री में जुते रहते हैं, वे घोर श्मशान के बढ़ाने वाले होते हैं, पुनर्भव को प्राप्त करने वाले होते हैं।)